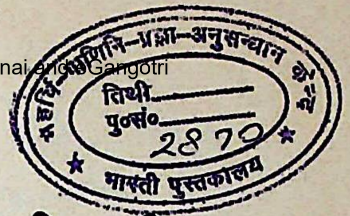
175

भारतीय दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान

तृतीय खण्ड
(वायु एवं स्पर्श-विज्ञान)



डा० सुद्युम्न आचार्य



भारतीय दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान

तृतीय खण्ड

(वायु एवं स्पर्श-विज्ञान)



लेखक

डा० सुद्युम्न आचार्य
व्याकरणाचार्य, M.A. (अष्ट-स्वर्णपदकविजेता) D.Phil
रीडर-स्नातकोत्तर संस्कृत अध्ययन तथा शोध विभाग
श्री मु० म० टाउन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज,
जनपद-बलिया (उ०प्र०)-२७७००१

प्रकाशकः गृहसंस्थान
वेद वाणी वितानम्
प्राच्य विद्या शोध संस्थानम्
रघुराजनगर, कोलगवाँ
सतना (म०प्र०)–४८५००१

मूल्य २५/– रू० मात्र
प्रथम संस्करण
मुद्रित–७५० प्रतियाँ

लेजर टाइप सेटिंग
रवि कम्प्यूटर्स
टाउन कालेज चौराहा,
बलिया (उ०प्र०)

मुद्रण
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
वाराणसी (उ०प्र०)



प्राक्कथन

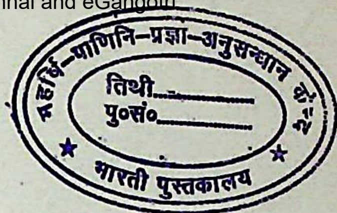
भारतीय दर्शन तथा भौतिक विज्ञान के तृतीय खण्ड के अन्तर्गत वायु एवं स्पर्श विज्ञान की विवेचना प्रस्तुत है। वायु जैसे सुपरिचित पदार्थ के गुण धर्मों को भली प्रकार समझने के लिये दर्शन–शास्त्र तथा भौतिक विज्ञान को इतिहास में लम्बी यात्रा तय करनी पड़ी है। इस यात्रा को सफल बनाने के लिए देश विदेश के विद्वानों ने निरन्तर आपसी सहयोग तथा सम्पर्क प्रदान किया है। यह जानना बहुत रोचक है कि इस क्रम में विद्वानों को किन पड़ावों से गुजरना पड़ा है।

प्रस्तुत खण्ड में वायु के सभी पक्षों को क्रमबद्ध रीति से निरूपित करने का प्रयास किया गया है। इसे रोचक बनाने के भरपूर प्रयास के बाद भी इसमें दर्शन तथा विज्ञान की गम्भीरता आ ही गई है, जिसे रोका नहीं जा सकता था।

पुस्तक की शुद्धि पर पूरा ध्यान रखने पर भी यदि कहीं अशुद्धि हो तो उसके लिये कृपालु पाठक क्षमा करें।

-लेखक

विषय—सूची



तृतीय खण्ड

वायु एवं स्पर्श-विज्ञान

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा।

—अथर्ववेद ८.१.५

मातरिश्वा वायुर्मातर्यन्तरिक्षे श्वसिति।

—निरुक्त ८.१.५

We live on the bottom of an Ocean of air-the atmosphere. Every body, every grain of sand, any object situated on the earth is subject to air pressure.

-Physics for everyone, book 1, Page 228

१. जीवन की सबसे पहली पहचान!

छान्दोग्य उपनिषद् में एक कहानी आई है कि एक बार शरीर की इन्द्रियों में विवाद छिड़ गया कि उनमें सबसे श्रेष्ठ कौन है। वे लड़ती हुई इस झगड़े के निपटारे के लिये प्रजापति के पास पहुँचीं। प्रजापति ने कहा कि इसका निर्णय परीक्षा से हो। जिसके चले जाने पर शरीर सबसे कुरूप तथा अपवित्र दिखाई पड़े, वही सबसे श्रेष्ठ है। इस परीक्षा के लिये सबसे पहले वाणी शरीर से बाहर निकल गई। उसने एक साल बाद वापस लौट कर शरीर से पूछा कि कहो कैसा लगा। शरीर ने कहा कि जैसे गूँगे लोग मजे से देखते, सुनते, खाते–पीते रहते हैं, वैसा ही लगा। इस प्रकार क्रम २ से आँख, कान तथा मन आदि एक एक साल के लिये शरीर से बाहर गए तथा सबको वैसा ही उत्तर मिला।

अन्त में चलने की बारी आई प्राण की! तब तो ऐसा लगा कि जैसे घोड़ा भागते हुए पैरों की कील उखाड़ दे, वैसे प्राण सभी इन्द्रियों को जड़ से उखाड़े डाल रहा है। तब सभी ने प्राण से प्रार्थना की कि आप हमारे स्वामी हैं, आप मत जावें।

इस समय वाणी ने कहा कि जो मैं 'वसिष्ठ' कही जाती हूँ, वह सचमुच तुम्हीं हो। आँखों ने कहा कि जो मुझे लोग 'प्रतिष्ठा' कहते हैं, वह प्रतिष्ठा केवल तुम हो। कानों ने कहा कि मुझे लोग जो 'सम्पत्' कह कर पुकारते हैं, वह वास्तव में तुम हो। मन ने कहा कि मुझे जो लोग जीवन का 'आयतन' या आधार समझते हैं, वह केवल तुम हो–

'अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीति। अथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत् प्रतिष्ठासीति। अथ हैनं श्रोत्रमुवाच यदहं सम्पदस्मि त्वं तत् सम्पदसीति। अथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति'। —छान्दोग्य उपनिषद् ५.१.१४

कुछ लोगों को सन्देह हो सकता है कि प्राणों के महत्त्व को समझाने के लिये उपनिषत् को इतनी बड़ी परीक्षा का आयोजन क्यों करना पड़ा। क्या हमारे लिये प्राण इतना अगम्य है। पर विचार करने पर लगता है कि यही जीवन की सचाई है। जो हमारे जीवन का अनिवार्य है, जो शरीर का सुन्दरतम है, वह हमारी आँखों से ओझल रहता है। उस ओर हमारा सबसे कम ध्यान जाता है। आँख, कान को बन्द करके हम उनके महत्त्व को आसानी से जान लेते हैं। क्योंकि किसी

का अभाव उसके महत्त्व को बताने का सबसे बढ़िया उपाय है। पर प्राण अपने महत्त्व को बता नहीं सकता। क्योंकि जब तक हम रहते हैं, तब तक प्राण रहता है तथा जब प्राण नहीं रहता तब उसके अभाव को जानने के लिये हम खुद नहीं रहते! ऐसे में प्राण कैसे बताए अपने महत्त्व को!!

पर उपनिषत् से सूचना प्राप्त करके जब हम उसे ध्यान से देखते हैं तो पाते हैं कि शरीर का हर अंग, उसकी प्रत्येक इन्द्रिय, उसकी प्रत्येक कोशिका उस प्राण से जुड़ी हुई है। इस प्रकार प्राण को जीवन की पहचान कहना भी उतना सही नहीं है। क्योंकि यह पहचान तो तब बनें, जब हम इसे अलग करके देख सकें। इस प्रकार यह तो केवल 'परम प्रतिष्ठा' है!

संस्कृत में प्राण के लिये जो शब्द विकसित हुए, वे अवस्थिति या प्रतिष्ठा के ही द्योतक हैं। 'प्राण' शब्द का मूल अर्थ यही है[1]। अन्य 'असु' शब्द अस् धातु से विकसित है, जिसका अर्थ 'होना' मात्र है। निरुक्त के अनुसार असु+र अर्थात् 'प्राणों वाला' इस यौगिक अर्थ में असुर का प्रयोग होता है[2]। वेद में इसी मौलिक व्युत्पत्ति के अनुसार असुर शब्द[3] का तथा अवेस्ता में 'अहुर' शब्द का देवता अर्थ में प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार विश्व में क्षुद्र से लेकर विशाल से विशालतम जन्तुओं के प्राण को ही प्रतिष्ठास्वरूप मानते हुए उन्हें एक सामान्य नाम दिया गया— प्राणी। अर्थात् ये सभी प्राण ग्रहण करने वाले हैं। ये अपने आकार प्रकार स्वभाव आदि में लाखों, करोड़ों प्रकार के हो सकते हैं। पर इनमें प्राण ग्रहण करने की पहचान समान रूप से परिव्याप्त है।

विदेशों में भी सभी प्रकार के जन्तुओं के लिये एक नाम animal प्रदान किया गया। यह शब्द लैटिन के animale से विकसित है जिसका अर्थ 'श्वास ग्रहण करने वाला' है। इंग्लिश में भी animate क्रिया का श्वास लेने अर्थ में प्रयोग होता है। आजकल हम लोग animal का अनुवाद 'चौपाए पशु' करते हैं। पर जन्तु—विज्ञान के अनुसार विस्तृत अर्थो में protozoa जैसे एककोशीय सूक्ष्म

---

१. उपनिषद् में ब्रह्म को 'जलान्' नाम दिया है। क्योंकि यह ज= उत्पत्ति, ल= विलय तथा 'अन्' अर्थात् अवस्थिति करने वाला है। द्रष्टव्य— सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत— छान्दोग्य उपनिषद् ३.१४.१

२. अपि वाऽऽसुर इति प्राणनाम, अस्तः शरीरे भवति तेन तद्वन्तः— निरुक्त ३.८

३. स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना— ऋग्वेद ५.५१.११ इस मन्त्र में सूर्यदेव को असुर कहा गया है।

जीवों से लेकर विशालतम जन्तु भी श्वास ग्रहण करने की योग्यता के कारण animal के अन्तर्गत आते हैं।[१]।

आधुनिक जन्तु–विज्ञान ने सूक्ष्मदर्शी आँखों से हमारे शरीर की संरचना का अचरजभरा चित्र उपस्थित किया है। उनके अनुसार विशाल से विशालतम शरीर क्षुद्र से क्षुद्रतम कोशिकाओं से निर्मित हैं। इस विवरण से तो ऐसा लगता है मानों यह शरीर विशाल मधुमक्खी का छत्ता हो, जिसमें छोटे–२ असंख्य डिब्बे हों तथा जिनमें अलग–२ जीवन रूपी रस भरा हो[२]! इन कोशिकाओं को मोटे तौर पर सन्तरे की फाँकों में पतली झिल्ली से घिरे हुए रसदार डिब्बों के उदाहरण से भी समझा जा सकता है। ऊपर से एक दिखने वाला सन्तरा भी वास्तव में ऐसे सैकड़ों डिब्बों का समूह होता है। सामान्य प्राणी की भी ऐसी ही स्थिति है। पर हम इन कोशिका रूपी डिब्बों के अति–सूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्मदर्शी के बिना इन्हें नहीं देख सकते। जैसे तर्कुरूपी पेशी– कोशिका ६० से १०० माइक्रोन तक लम्बी होती है। इतनी छोटी कोशिका में जीवन की वे प्रत्येक आवश्यक क्रिया सम्पादित होती है, जिनके लिये हमारे पास इतना बड़ा शरीर है! इनमें हर समय पोषक आहार का ग्रहण, अनावश्यक पदार्थ का उत्सर्जन होता रहता है। इनमें वर्तमान 'मितकेन्द्र' (mitochondria) जैसे अतिसूक्ष्म तन्तु–सूत्रों के द्वारा प्राण–वायु का श्वसन तथा ऊर्जा का स्थानान्तरण आदि सम्पन्न होता है। इनमें उपस्थित 'केन्द्रक' (nucleus) के द्वारा विभिन्न नाडीय आवेगों से सूचना के अनुसार कार्य करते हुए मस्तिष्क जैसा कार्य सम्पादित किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक कोशिका का अपना जीवन है। इसीलिये वैज्ञानिक लोग शरीर की किसी भी कोशिका को अलग निकाल कर उन्हें अनुकूल परिवेश तथा पोषक आहार देकर जब तक चाहें तब तक जिन्दा रख सकते हैं।

---

१. When we use the word 'animal' we tend to think of pretty large creatures that move about on earth. But did you know that amoeba is considered an 'animal'.

...........The amoeba belongs to the Protozoa, which is the lowest division of the animal kingdom.

—Heres more tell me why, London, Page 313.

२. योग सूत्र व्यास–भाष्य में एक सुन्दर रूपक अलंकार में इस शरीर को मधुमक्खी का छत्ता, इन्द्रियों को मधुमक्खी तथा चित्त को इन मधुमक्खियों का राजा बताया है–

यथा मधुकरराजानं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति, निविशमानमनुनिविशन्ते, तथेन्द्रियाणि पर–शरीरावेशे चित्तमनुविधीयन्ते।

—योग सूत्र ३.३८ पर व्यास भाष्य।

इन कोशिकाओं को ऊर्जा प्राप्ति हेतु ग्लूकोज के विखण्डन के लिये प्रतिक्षण प्राण–वायु की आवश्यकता होती है। इनके पास इन्हें संचित रखने के लिये कोई गोदाम नहीं है। अतः ये प्रतिक्षण आहार तथा प्राण–वायु के लिये छटपटाती रहती हैं। सोते समय स्थिर दिखने वाली पेशी कोशिकाएँ (muscular cells) भी भूख, प्यास से बेहाल होकर ऊष्मा ऊर्जा की प्राप्ति के लिये लगातार खाती, साँस लेती तथा मल उत्सर्जन करती हैं। इस प्रकार विश्व के प्रत्येक प्राणी की प्रत्येक कोशिका को मोटे तौर पर जिस चीज की प्रतिक्षण समान रूप से आवश्यकता है, वह है– प्राण। एक सेल् वाले अमीबा (amoeba) जैसे प्राणी को इसे ग्रहण करने की बड़ी सुविधा है। वह अपने चारों ओर से कहीं से भी जल तथा इसमें घुली ऑक्सीजन को परासरण (osmosis) क्रिया द्वारा प्राप्त कर सकता है तथा विसरण (diffusion) द्वारा अपशिष्ट पदार्थ को बाहर निकाल सकता है। पर किसी शरीर में कोशिकाओं का समूह एक विशाल बस्ती के सदृश है। किसी घनी बस्ती में शुद्ध जल की प्राप्ति तथा मल के निकास की जैसी व्यवस्था होती है, वैसी ही यहाँ भी है। हम ज़ानते हैं कि इसके लिये शहरों में बड़ी छोटी नालियों तथा पाइप की व्यवस्था की जाती है। स्वच्छ जल को मशीनों से विशाल टंकियों में चढ़ाकर पाइप द्वारा ऊपरी मंजिल के मकानों में पहुँचाया जाता है तथा नालियों के द्वारा अशुद्ध पानी को दूर भेजा जाता है। शहरों में स्वच्छ हवा को पाइप से भेजने की व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। क्योंकि उसे वातावरण से सीधे प्राप्त कर लिया जाता है। पर कोशिकाओं की इस घनी बस्ती में भोजन, पानी के अलावा प्राण–वायु भेजने की भी अतिरिक्त व्यवस्था करनी पड़ती है। पोषक आहार ग्लूकोज आदि को 'रक्त–रस' (plasma) के रूप में नालियों द्वारा दूर भेजा जाता है। पर प्राण–वायु का इस रक्त–रस में विलयन बहुत कम हो पाता है। अतः इसे उभयावतल डिस्क (disk) जैसी या चकती जैसी अथवा बीच में दबे हुए गोल तकिया के आकार की रक्त–कणिका (red blood corpuscles) रूपी छोटे–छोटे डिब्बों में बन्द करके इसी रक्त में तैराकर धमनी (artery) धमनिका (arteriole) तथा केशिकाओं (capillary) रूपी बन्द नालियों के द्वारा अन्तिम छोर की कोशिकाओं तक पहुँचाया जाता है। सुदूर कोशिकाओं तक जाते–जाते ये नालियाँ शाखाओं, प्रशाखाओं में विभक्त होती हुई क्रमशः छोटी होती जाती हैं। इन नालियों तथा कणिकाओं की लघुता सचमुच विस्मयजनक है। धमनिका का व्यास लगभग ०.१ मिलीमीटर या १०० माइक्रोन तथा केशिकाओं का व्यास लगभग ०.०१ मिलीमीटर या १० माइक्रोन (एक मिलीमीटर का सौवाँ भाग) तक होता है। इनके अन्दर लगभग ०.००७ मिलीमीटर या ७–८ माइक्रोन व्यास की रक्त–कणिकाएँ

अपने डिब्बे में प्राण–वायु लेकर सुदूर कोशिकाओं तक दौड़ती हैं। इन कणिकाओं की लघुता का अन्दाज इस प्रकार भी लग सकता है कि एक घन मिलीमीटर रक्त में इन कणिकाओं की संख्या लगभग ५० लाख होती है। इस प्रकार यदि मनुष्य के शरीर में ३ लीटर रक्त है तो इसमें १५ खरब कणिकाएँ समाती हैं! इन कणिकाओं वाले रक्त को ऊपरी मंजिल की कोशिकाओं तक महुँचाने के लिये पम्प करना पड़ता है। यह कार्य पम्पिंग स्टेशन में हृदय के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसे बाहरी मशीनों की तरह आराम करने की सुविधा प्राप्त नहीं है। यह पूरे जीवन भर निरन्तर प्रति मिनट औसतन ७० बार आकुंचन करते हुए प्रति आकुंचनों के बीच ०.४ सेकेण्ड का समय विश्राम के नाम पर प्राप्त कर पाता है!!

इस प्रकार ये कोशिकाएँ प्राण–वायु की सहायता से ग्लूकोज अणुओं के नियन्त्रित विखण्डन द्वारा निरन्तर सन्तुलित ऊर्जा प्राप्त करती हैं। वैज्ञानिक काव्य की भाषा में –इस प्रक्रिया में कोशिका रूपी चूल्हे में A.T.P. रूपी दियासलाई से ऑक्सीजन की सहायता से ग्लूकोज रूपी ईंधन में आग लगाकर ऊष्मा ऊर्जा प्राप्त की जाती है। अग्नि के द्वारा दहन के समय भी इसी प्रक्रिया से भयंकर ऊष्मा ऊर्जा मुक्त होती है। श्वसन द्वारा यह ऊर्जा धीरे–२ नियंत्रित प्रक्रम से प्राप्त होती हैं। दहन के समय ऑक्सीजन के चारों ओर से अनियन्त्रित उपयोग के द्वारा पदार्थ के अणुओं के रासायनिक बन्धन धड़ाधड़ टूटते हुए ऊष्मा, प्रकाश ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त (Conservation of energy) के अनुसार इन दोनों उपायों से उत्पन्न ऊर्जा की मात्रा एक ही होती है। केवल उनके आविर्भूत होने की गति तीव्र या मन्द होती है। एक ग्राम शर्करा के जलाने से जितनी ऊर्जा अतितीव्र गति से एक साथ प्राप्त होती है, श्वसन के द्वारा भी ठीक उतनी ही ऊर्जा नियन्त्रित तथा मन्द गति से प्राप्त होती है। लोहा में जंग लगते समय ऊष्मा ऊर्जा उत्पन्न होने में भी ठीक यही प्रक्रिया दोहराई जाती है। पर वहाँ यह प्रक्रिया श्वसन से भी अतिमन्द गति से होती है। उसका यह अतिमन्दन इतना अधिक है कि हम इससे मुक्त होने वाली ऊष्मा ऊर्जा का कोई अनुभव नहीं कर सकते।

ऊपर बताए गए उदाहरणों में से मध्यम गति या नियन्त्रित प्रक्रम से उपभुक्त होने वाली प्राण–वायु को भारतीय दर्शन में जीवन की पहचान बताया है। प्रशस्तपाद भाष्य का कहना है कि सभी दिशाओं में कुटिल गति से दौड़ने वाली वायु जहाँ पर धौंकनी के समान नियत उपाय से तथा नियत क्रम से चलती हुई

१. शरीर–परिगृहीते वायौ विकृतकर्मदर्शनाद् भस्त्राध्मापयितेव।

–प्रशस्तपादभाष्य, आत्म–प्रकरण पृ. २००

निश्चित कार्य करती है, उससे जीवन की सूचना मिलती है[1]। जिस प्रकार किसी घर का मालिक अपने घर की टूट फूट की मरम्मत करता है, वैसे ही इन विशाल कोशिकाओं की बस्ती में रहने वाला इनका मालिक 'पुरुष' अपने प्राणों के द्वारा इनका पुनर्निर्माण करता रहता है। इस प्रकार अंगों के कार्य सञ्चालन के समय होने वाले 'भग्न–क्षत–संरोहण' में जो सहयोग प्रदान करे, वह प्राण–वायु जीवन की पहचान बनती है[2]।

हमारे ऋषियों ने इसे सामान्य वायु से भिन्न समझते हुए इसे अलग से 'प्राण' नाम दिया तथा यह माना कि यज्ञ आदि सभी कार्यों की व्यवस्था इसके होने पर ही सम्भव हो पाती है। अतः उन्होंने अनेक वचनों में अनेक सुन्दर उपमाओं के द्वारा सब कुछ इसमें ही प्रतिष्ठित बताया है—

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।

ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च।। प्रश्नोपनिषद् २.१६

अर्थात् जिस प्रकार रथ के (चक्र की) धुरी में सभी अरे या तीलियाँ प्रतिष्ठित होती हैं, उसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम, यज्ञ, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणों की सभी क्रियाएँ प्राणों में प्रतिष्ठित हैं।

इस वचन का विस्तृत आशय यह है कि सभी प्रांणि–शरीरों में जीवन की सभी कोशिकाओं की क्रियाओं की प्रतिष्ठा प्राण ही हैं। हमारी नासिका में प्राणों को खींचने की जो कशिश है, वह वास्तव में हमारे शरीर की अरबों, खरबों कोशिकाओं की सामूहिक माँग का परिणाम है। हमारा मस्तिष्क शरीर के विविध भागों में निरन्तर नाडीय विद्युत् 'आवेग' भेजते हुए हृदय–सञ्चलन, रक्त–संवहन आदि के द्वारा इनके लिये प्राणों की आपूर्ति की व्यवस्था करता है। ऐसे 'आवेग' शरीर में फैले स्वायत्त तन्त्रिका तन्त्र (autnomic nervous system) के अत्यन्त पतले प्रायः ०.०१ मि.मी. से भी कम मोटाई के तन्तुओं के माध्यम से भेजे जाते हैं। इन पर हमारी इच्छा का कोई नियन्त्रण नहीं होता। इसलिये हम प्रतिक्षण कोशिकाओं

१. आज से पौने तीन हजार वर्ष पहले यास्क ने 'पुरुष' शब्द के नामकरण का आधार शरीर में रहने वाला' होना बताया था। द्रष्टव्य– पुरुषः पुरिशयः– निरुक्त २.२। पूः शरीरं बुद्धिर्वा– – – तयोरसौ शेते विशेषेणास्ते इति पुरिशयः सन् पुरुष इत्युच्यते– उक्त वचन पर दुर्गाचार्य भाष्य। उपर्युक्त नई व्याख्या के अनुसार कोशिकाओं रूपी पुर में रहने के कारण इसे 'पुरुष' कह सकते हैं।

२. देहस्य वृद्धिक्षतभग्नसंरोहणादिनिमित्तत्वाद् गृहपतिरिव।

———प्रशस्त–पादभाष्य, आत्म–प्रकरण, पृ. २००

द्वारा प्राणों की माँग तथा इनकी आपूर्ति के विषय में कुछ नहीं जान पाते।

नासिका द्वारा खींचे गए प्राणों पर भी हमारी इच्छा का केवल कुछ क्षणों के लिये आंशिक नियन्त्रण ही हो सकता है। हम अपनी इच्छा का प्रयोग करके अधिक समय तक इन्हें नहीं रोक सकते। बड़ी से बड़ी इच्छा–शक्ति वाला मनुष्य भी इन प्राणों का वशी (=वश में रखने वाला) नहीं, अपितु वश्य (=वश में रहने वाला) ही होता है। उपनिषदों के अनुसार मनुष्य अधिकतम इन्द्रियों का वशी हो सकता है, जिसे जितेन्द्रिय कहते हैं[1]। पर वह प्राणों का वशी नहीं हो सकता। प्राणों का वशी केवल ईश्वर है जो नौ दरवाजे वाले देहरूपी नगर या बस्ती में रह कर सब मनुष्यों को संचालित करते हुए प्राणों को अपने अधीन रखकर प्राण लेने में समर्थ है[2]। पर मनुष्य इन्हें अपने अधीन नहीं रख सकता। अतः हमारे सोते, जागते तथा विविध कार्यों को करते हुए ये प्राण हमारी जानकारी या इच्छा के अधीन न होकर निरन्तर कार्य करते हैं। इसलिये हम इन्हें लगभग 'अपने आप' चलने वाला साधारण कार्य मानते हैं। पर इनकी प्रक्रिया के सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा अथवा ध्यान–योग के द्वारा अन्य कार्यों से विरत होकर 'साक्षी–भाव' से देखकर हम जान पाते हैं कि यह जीवन की कितनी विलक्षण घटना है! विद्वानों, कवियों ने अनेक सूक्तियों में इसकी विलक्षणता का परिचय दिया है। एक सुन्दर श्लोक में रूपक अलंकार का प्रयोग करते हुए कहा है कि खुले हुए ६ दरवाजे वाले इस शरीर–रूपी पिंजरे में एक प्राण रूपी पक्षी[3] रहता है। इतने छिद्रों के रहते हुए इसका बने रहना विस्मयपूर्ण है, इसके निकल जाने में क्या अचरज है[4]!!

---

१. जो ज्ञानवान् पुरुष अपने समाहित चित्त से इन्द्रियों को वश में रखता है, उसकी इन्द्रियाँ वश्य होती हैं तथा वह इन्द्रियों का वशी होता है–
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।। —— कठोपनिषद् १.३.६

२. नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च।। ——श्वेताश्वतरोपनिषद् ३.१८
वेद में इस अकेले ईश्वर को प्राणों के अधीन न रहकर प्राण लेने वाला बताया है–
आनीदवातं स्वधया तदेकं, तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास। ——ऋग्वेद १०.१२९.२

३. सामान्य लोकजीवन में भी प्राणों को पक्षी बताने वाला रूपक बहुत लोकप्रिय रहा है। इसलिये प्राकृत तथा हिन्दी आदि में 'प्राण रूपी पक्षी उड़ना' इस अर्थ में 'प्राणपखेरू उड़ना' कहा जाता है।

४. उद्घाटित–नवद्वारे पञ्जरे विहगोऽनिलः!
यदि तिष्ठति तदाश्चर्यं, प्रयाणे विस्मयः कुतः!!

पर अपने जीवन में 'अतिपरिचयादवज्ञा' इस मुहावरे के अनुसार हम इन प्राणों को तथा विश्व में वायु के व्यापार को अति–स्वाभाविक मानते हैं। हमें यह जल्दी भान भी नहीं होता कि हम जन्म से लेकर मृत्यु तक सैकड़ों किलोमीटर की ऊँचाई तक फैले हुए अतिविशाल वायु के समुद्र या वायु–मण्डल[1] के सबसे नीचे वाले तल में निवास करते हुए प्राण लेते हैं। जब कि विश्व में अब तक ज्ञात सबसे गहरा पानी का समुद्र 'मैरियन दरार' की गहराई ११.५ कि.मी. है तथा जलचर प्राणी पानी के जबर्दस्त भार के कारण वहाँ एक निश्चित गहराई से नीचे नहीं रहते। इस धरती में पानी के समुद्र का जो सबसे ऊपरी तल होता है वही वायु के समुद्र का सबसे निचला तल होता है। मछली अपनी विशेष बनावट के द्वारा पानी के सबसे ऊपरी तल तक विचरण कर सकती है। पर हम अपने भारी आकार के कारण सामान्यतः इस वायु–समुद्र से ऊपर नहीं उठते। हम अपने दैनिक कार्यों के लिये इसकी सबसे नीचे वाली तलहटी में रहने के लिये मजबूर हैं। हम अपनी आदतवश इसे ही स्वाभाविक मानते हैं।

मानव जाति के इतिहास में बहुत समय तक वायु के गुणों को सही रूप से न समझ पाने का कारण इसके व्यापार को अतिस्वाभाविक मानना ही रहा है। इस वायु से अति–सम्पर्क तथा इस प्रकार तथाकथित 'अति–परिचय' की दशा में इसे भली प्रकार जानने के लिये मानव को बहुत मुश्किलें उठानी पड़ीं। स्थिति यह रही कि इस वायु ने सदा साथ रह कर अपने गुणों को हमसे छिपाया। हमारा दैनिक अनुभव यह है कि सुदूरवर्ती पिण्ड तथा सूक्ष्म कण हमारी आँखों से ओझल होते हैं। पर साथ ही यह भी सच है कि जीवन भर प्रतिक्षण एक ही रूप से प्रभावित करने वाले वस्तु के गुण भी हमारे अनुभव से बाहर हो जाते हैं। वायु के सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् यह सच सबसे स्पष्ट रूप से सामने आया कि सामान्यतः जिसे हम सदा देखते हैं, उसे भी कभी नहीं देख पाते!!

हवा की सम्पीडकता, प्रतिरोधकता, इसका गुरुत्व, विश्व में तथा शरीर में छिपी इसकी अपरिमित ऊर्जा आदि को जानने में हम इसी सच को लागू होता हुआ पाते हैं। हवा ने विश्व के प्रत्येक पिण्ड में दबाव तथा प्रत्येक गतिशील पिण्ड में हर समय प्रतिरोध को उपस्थित करके इन गुणों को हमारे अनुभव से बाहर कर दिया। जीवन से मृत्यु तक हमारे शरीर में हर समय समान भार डालकर इस हवा ने अपने गजब के भार को प्रकट नहीं होने दिया। विश्व में भौतिकी के सुदीर्घ

१. इसके लिये इंग्लिश का atmosphere शब्द ग्रीक के atmos (gas) तथा sphaira (= ball) इन दो शब्दों से मिल कर बना है। अतः इसका शाब्दिक अर्थ 'गैस की गेंद अथवा गोला' है।

इतिहास में महान् दार्शनिक अरस्तू से लेकर हजारों वर्षों तक हवा के वजन को जानने के प्रयत्न व्यर्थ हुए हैं! क्योंकि हमारे ऊपर निरन्तर पड़ने वाला वायुदाब सामान्य अनुभव में तथा परीक्षण के दौरान भी पकड़ से बाहर हो जाता था। किसी तराजू के पसंगों पर हवा से भरे ब्लैडर में अन्दर से तथा खाली ब्लैडर में ऊपर से ठीक पहले के समान दबाव डाल कर तथा इस प्रकार दोनों दशाओं में ब्लैडर का समान भार प्रदर्शित करते हुए हवा हमें सदा यही समझाती रही कि इसकी उपस्थिति वजन में कोई भिन्नता नहीं लाती[१]!!

इस हवा को इकट्ठा करने की विधि के अभाव में इसकी अपार ऊर्जा को जानने में भी काफी कठिनाई उठानी पड़ी। आधुनिक युग में इस विधि को विकसित करके विश्व के विविध कार्यों के लिये अनेक उपकरणों के द्वारा इस ऊर्जा का उपयोग लेना सम्भव हो सका है।

भारतीय मनीषा ने अधिकतम प्राणों के सञ्चय की विधि का आविष्कार करके शरीर में वायु की छिपी अपरिमित ऊर्जा को पहचाना था तथा इसके उपयोग के द्वारा शरीर तथा मन को ऊर्जस्वी बनाने में महती सफलता प्राप्त की थी। भारतीय दर्शन एवं धर्मशास्त्र में प्राण-धारण की महत्ता के वर्णन भरे पड़े हैं। योग-सूत्र का कहना है कि प्राणों को विशेष प्रकार से धारण करने से चित्त की एकाग्रता, परम-प्रसन्नता आदि की उपलब्धि होती है[२]। इससे मनुष्य की मूढता तथा अनवबोध की स्थिति का विनाश होकर ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करने की अपार क्षमता प्राप्त होती है[३]।

इस प्रकार भारतीय साधकों ने माना कि शरीर के तमाम विकारों, मन की तमाम कुण्ठाओं को दूर करने तथा इस प्रकार शरीर, मन को परम पवित्र करने के लिये प्राणों के निग्रह से बढ़िया कोई उपाय नहीं है। अतएव गीता में श्रीकृष्ण ने वायु को पवित्र करने वालों में सर्वश्रेष्ठ मानते हुए अपनी दिव्य विभूति को पवन-स्वरूप बताया है[४]। मनुस्मृति में भी कहा है कि जिस प्रकार सोना आदि

---

१. विशेष विवरण के लिये देखें इस खण्ड का ६वां परिच्छेद।

२. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य। —योग-सूत्र १.३४

३. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। —योग-सूत्र १.५२
प्राणायामानभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म।
—उसी सूत्र पर व्यास- भाष्य

४. पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्। —भगवद्गीता १०.३१

धातुओं को तपाने से उसके विकार का नाश होता है। वह धातु परम शुद्ध तथा कान्तिमान् बनती है। इसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा भी इन्द्रिय–दोषों का विनाश होता है तथा इस प्रकार वे परमस्फूर्तिमती एवं शक्तिशाली बनती हैं[1]।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसकी व्याख्या यह है कि फेफड़े में सामान्यतः ३०० से ४०० करोड़ वायुकोष्ठक (alveoli) होते हैं। इनके चारों ओर रक्तकेशिकाओं का अत्यन्त घना जाल बिछा रहता है। इन वायुकोष्ठकों से ऑक्सीजन का रुधिर में तथा रुधिर की कार्बन डाइ ऑक्साइड का वायुकोष्ठकों में विसरण होता रहता है। सामान्य श्वास–प्रश्वास के समय बहुत कम वायुकोष्ठक वायु से भरते हैं। पर प्राणायाम के उपाय से रुधिर को अधिकतम ऑक्सीजन उपलब्ध होती है तथा इसकी अधिकतम मलिनता दूर होती है। इससे रुधिर का रंग अतिस्वच्छ लाल हो जाता है तथा यह शरीर की प्रत्येक कोशिका को अधिकतम ऊर्जा प्रदान करने में सक्षम हो जाता है।

प्राणों की इन सभी विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर ही ऋषि ने भाव विभोर होकर यह प्रार्थना की है–

नसोर्मे प्राणोऽस्तु।

–पारस्कर गृह्य सूत्र २.३.२५

हे ईश्वर! मेरी नासिका में सदा प्राणों की अवस्थिति रहे।

---

१. दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्– मनुस्मृति ६.७१

२. उड़ती हवा या बहती हवा
(वायु की पहचान)

हिन्दी भाषा में हवा की चलना क्रिया को प्रकट करने के लिये कोई अतिरिक्त शब्द नहीं है। 'उड़ना' क्रिया का मौलिक प्रयोग हवा में उड़ने वाली चिड़िया आदि की गति को प्रकट करने के लिये होता है। 'बहना' क्रिया मूलतः पानी की गति को द्योतित करती है। वायु की गति को प्रकट करने के लिये इन्हीं क्रियाओं से काम चलाया जाता है।

पर इंग्लिश, संस्कृत आदि भाषाओं में इसके लिये अलग–२ शब्द हैं। इंग्लिश में flow का अर्थ बहना तथा blow का अर्थ 'हवा का चलना' है। इसी प्रकार संस्कृत में 'वहति' पानी बहने अर्थ में तथा 'वाति' क्रिया हवा चलने अर्थ में प्रयुक्त होती है।

इन भाषाओं में क्रिया के शब्दों की भिन्नता से इस वायु की अन्य द्रव्यों से भिन्नता भी प्रकट होती है। भारतीय दर्शन में इसे पृथिवी, जल आदि द्रव्यों से सर्वथा भिन्न मानते हुए इसकी अलग पहचान बताई है।

वायु का लक्षण (दर्शन)– दर्शन के अनुसार वायु वह है जो १. तिर्यग्गति करती है[1]। २. जिसमें रूप, रस, गन्ध गुण नहीं रहता। ३. जिसमें शीत, उष्ण स्पर्श भी नहीं, अपितु इन दोनों से विलक्षण अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्श रहता है[2]। इनका क्रमिक विवरण इस प्रकार है–

१. वायु तिर्यग्गति अर्थात् तिरछी या कुटिल गति करती है। एक स्थान से चली वायु सीधी दिशा में नहीं, अपितु विविध दिशाओं में भागती रहती है। जबकि पृथिवी का कोई पिण्ड साधारणतः अगर कोई प्रतिबन्धक न हो तो सीधी दिशा में 'पतन' करता है। इसी प्रकार जल भी प्रतिबन्धक न होने पर सीधी दिशा में 'स्यन्दन' करता या बहता है। इनमें वर्तमान वेग क्रमशः इनके सीधे पतन या स्यन्दन का हेतु होता है। पर वायु में वर्तमान वेग से यह अलग–२ दिशाओं में दौड़ती है। अन्य किसी भी द्रव्य में यह विशेषता नहीं है। अत एव यही वायु की पहचान है।

---

१. तिर्यग्गमनवानेष ज्ञेयः स्पर्शादिलिंगकः ——कारिकावली श्लोक ४३

२. अपाकजोऽनुष्णाशीतस्पर्शस्तु पवने मतः —— वही, श्लोक ४२

२. वायु में उड़ते हुए त्रसरेणु अथवा धूल या धुएँ के कण भी वायु के सहारे तिर्यग्गति करते हैं। फिर भी इन्हें 'वायु' नहीं माना जा सकता। क्योंकि इसकी अन्य विशेषता के अनुसार इस वायु में न तो गन्ध होती है, न ही कोई रूप रहता है। गंन्ध केवल पृथिवी की तथा रूप केवल पृथिवी, जल, तेज की विशिष्टता है। अतः उड़ता हुआ काला धुँआ रूपवान् होने से तथा धूपबत्ती का धुँआ भी सुगन्धित होने से विशुद्ध वायु की श्रेणी में नहीं आता। उड़ने वाला रूपवान् तिनका वायु में उड़ता है। वह स्वयं वायु नहीं होता। इसी प्रकार धुएँ के कण वायु में उड़कर भी 'वायु' महाभूत के अन्तर्गत नहीं हैं। श्वेत–श्याम बादल भी धुआँ, जल तथा वायु का संघात है[1], विशुद्ध वायु नहीं।

३. वायु का अनुष्णाशीत स्पर्श होता है। गर्म हवा में तेजस् के अणु तथा शीतल वायु में जल के अणु वायु के साथ मिश्रित होते हैं। लौकिक व्यवहार में जल की शीतलता को वायु में आरोपित करके 'शीतल वायु' यह प्रयोग करते हैं, जो कि भ्रान्त है। क्योंकि तात्त्विक दृष्टि से शीत गुण केवल जल में ही समवेत होता है। वायु में इस शीतल जल का मिश्रण होता है। इस प्रकार कोहरा विशुद्ध वायु नहीं। अपितु वायु में उड़ने वाली धूल तथा जलकणों का मिश्रित रूप है। सर्दी के दिनों में यह मिश्रण मुँह से बाहर निकलता है। जो कि सर्वथा दृश्य होता है। इसे ही वाष्प कहा गया है। महाकवि कालिदास ने एक वर्णन में कहा है कि श्वास से निकली हुई शीशे पर पड़ी हुई 'वाष्प' के उड़ जाने पर निर्मित स्वच्छ शीशे के समान इन्दुमती का मुख प्रसादपूर्ण हो गया[2]!!

ओस के अदृश्य जल–कण भी वायु नहीं है। क्योंकि वायु की शीतलता के द्वारा वहां भी जलकण अनुमेय हैं तथा इसी गुण के कारण वे वायु से भी तथा रूपवान् धूम से भी सर्वथा पृथक् हैं। संस्कृत में इन्हें तुषार, तुहिन आदि कहा जाता है। शीत ऋतु में ये ही सूक्ष्म जल–कण नीचे गिर कर शीतल जल–बिन्दु का रूप धारण कर लेते हैं। महाकवि कालिदास ने अपने एक सुन्दर श्लोक में कहा है कि प्रातः समय में शीतकाल ओस की गिरती हुई बूँदों के द्वारा मानों आँसू बहा रहा है[3]!!

---

१. धूमज्योतिः–सलिलमरुतां सन्निपातः स मेघः। —मेघदूतम् १.५
२. निःश्वास– वाष्पापगमात् प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्मदर्शः। —रघुवंश ७.६८
३. तृणाग्रलग्नैस्तुहिनैः पतद्भिराक्रन्दतीवोषसि शीतकालः। —ऋतुसंहार ४.७
यूरोप में भी अरस्तू से लेकर विगत २०० वर्षों तक ओस का ऊपर से गिरना माना जाता था–
Since the days of Aristotle until about 200 years ago, it was believed that dew 'fell' somewhat like rain. —Tell me why, Page 49

वायु तथा गैस की पहचान (विज्ञान)— आधुनिक विज्ञान के अनुसार दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वायु में अनेक तत्त्वों तथा यौगिकों के अणुओं का प्रकीर्णित सम्मिश्रण होता है। इसमें सामान्यतः ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइ ऑक्साइड आदि अनेक गैसें तथा जल–वाष्प के साथ–२ असंख्य धूल के कण वर्तमान होते हैं। इनमें नाइट्रोजन का प्रतिशत सर्वाधिक होता है। सामान्य वातावरण में नाइट्रोजन ७८.०८४१ प्रतिशत, ऑक्सीजन २०.६४८६ प्रतिशत तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड ०.०३१८ प्रतिशत वर्तमान होती है। अत एव इस वायु का किसी एक गैस के अन्तर्गत निरूपण नहीं किया जा सकता। इसे अनेक गैसों के मिश्रण के प्रतिनिधि के रूप में स्थान दिया जा सकता है।

विज्ञान के अनुसार गैस वह है १. जिसमें किसी तत्त्व या यौगिक के अणु अपनी गतिज ऊर्जा द्वारा यदृच्छ गति करते हैं। २. जिसके अणुओं में परस्पर आकर्षण बल नगण्य होता है। ३. जिसका आकार तथा आयतन दोनों अनिश्चित होते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

जब किसी पदार्थ के अणुओं की दूरी काफी अधिक होती है तो इनमें परस्पर लगने वाला आकर्षण बल काफी कम होता है। अतएव ये अणु अलग–२ हर समय किसी भी दिशा में गति करने के लिये स्वतन्त्र होते हैं। इनकी प्रायः सम्पूर्ण ऊर्जा गतिज ऊंर्जा होती है। इसलिये ये यदृच्छ गति करते हैं। सर्वत्र अनियमित गति के कारण ये अपना निश्चित आकार नहीं बना सकते। इन्हें जितना भी बड़ा अवकाश दिया जाय, उन सबमें ये फैल जाते हैं। अतएव इनका आकार तथा आयतन भी अनिश्चित होता है। इस प्रकार की विशेषता वाले अणु–समूह को 'गैस' संज्ञा प्रदान की जाती है। वायु में अनेक तत्त्वों तथा यौगिकों के अणु–समूह वाली अनेक गैसें हैं तथा वायु इन अनेक गैसों का समूहीकृत नाम है।

दर्शन तथा विज्ञान में समानता— दोनों शास्त्रों में वायु या गैस की अनियमित गति स्वीकार्य है। दर्शन में वायु की जो तिर्यग्गति बताई गई है, वह आधुनिक विज्ञान की यदृच्छ गति के समतुल्य है। इस प्रकार दोनों के अनुसार इस परिस्थिति में असंख्य कण या अणु सभी दिशाओं में स्वतन्त्र तथा अनियमित गति करते हैं।

इसके साथ ही दोनों में यह भी मान्य है कि धूल आदि के उड़ते हुए कण वायु या गैस नहीं है। पर इसका कारण थोड़ा अलग–२ है। दर्शन के अनुसार ये पृथिवी के रूपवान् अणुओं के संघात हैं। संघात होने पर इनकी रूपवत्ता दृश्य भी है। जबकि वायु रूप–रहित होतीं है। अतः धूलि–कण वायु नहीं है।

विज्ञान के अनुसार ये उड़ते हुए धूलि–कण स्वतन्त्र अणु नहीं। अपितु अनेक अणुओं या यौगिकों के सम्पिण्ड हैं। अतः यदृच्छ गति वाले होकर भी ये गैस की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते।

इसी प्रकार कोहरा, बादल आदि भी विशुद्ध वायु या गैस नहीं है। क्योंकि दर्शन के अनुसार यहाँ दृश्य तथा स्पृश्य शीतल जलकण उपस्थित होते हैं। जबकि वायु रूप वाली तथा शीतल स्पर्श वाली भी नहीं है। विज्ञान के अनुसार यहाँ जल के स्वतन्त्र अणु नहीं, अपितु अत्यन्त छोटी बूँदों के रूप में जलाणु समूह उपस्थित होते हैं, जिनमें परस्पर अन्तरा–अणुक बंन्धन (inter-molecular bond) भी वर्तमान होता है। अतः ये वाष्प या गैस नहीं कहे जा सकते।

दर्शन तथा विज्ञान में मतभेद– दर्शन का मानना है कि जल, तेजस् आदि के तिर्यग्गति करते हुए अणु चाहे वे स्वल्प संघनित हों या सर्वथा स्वतन्त्र दशा में हों, वे वायु के अन्तर्गत नहीं आते। इस प्रकार कोहरा या ओस की दशा में शीतल वायु तथा तेजस् के अणुओं से मिश्रित उष्ण वायु वास्तव में विशुद्ध वायु नहीं है। शुद्ध वायु का स्पर्श उष्ण तथा शीतल दोनों से भिन्न सर्वथा विलक्षण होता है।

विज्ञान का कहना है कि सर्वथा स्वतन्त्र दशा में यदृच्छ गति करने वाले जल के अणु भी वाष्प रूप में वायु के एक आवश्यक घटक के रूप में मान्य हैं। यह वाष्प वायु के समान सर्वदा अदृश्य होती है। दैनिक जीवन में ऐसी कोई वायु नहीं, जिसके घटक के रूप में ऐसे वाष्परूपी स्वतन्त्र अदृश्य जलाणु उपस्थित न हों। गर्मी के दिनों में भी हम किसी ग्लास में बर्फ डालकर रख दें तो उस ग्लास के बाहर चारों ओर पानी की बूँदें हो जाती हैं। ये बूँदें वायु में उपस्थित जल के स्वतन्त्र अणुओं के संघनन से निर्मित होती हैं। अतः वायु के ऑक्सीजन आदि अन्य घटकों के समान ये जलाणु अथवा वाष्प भी इस वायु का अवश्यक घटक है।

ओस में भी यदि ये वाष्परूपी स्वतन्त्र जलाणु वर्तमान हों तो वे विशुद्ध वायु के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। पर ये ही जलाणु जब संघनित होकर कोहरे का रूप धारण करते हैं अथवा जब धरती पर स्यन्दन की क्षमता वाली शीतल नन्हीं बूँदों का रूप धारण करते हैं तब इन्हें दर्शन शास्त्र के समान वायु के अनिवार्य घटक के अन्तर्गत नहीं माना जात्ता। ये ओस की बूँदें ऊपर से नहीं गिरती। अपितु उसी स्थान पर संघनित होकर निर्मित होती हैं। इस प्रकार विज्ञान में जलाणु संघनन से पूर्व स्वतन्त्र दशा में वाष्प या वायु का आवश्यक घटक हैं पर संघनन के पश्चात् जल हैं।

गर्म हवा में वायु के उन्हीं सभी अनिवार्य घटकों के अलावा कोई अतिरिक्त घटक उपस्थित नहीं होता। क्योंकि विज्ञान में तेजस् को कोई अतिरिक्त तत्त्व या इसके कोई अतिरिक्त अणु स्वीकार नहीं किये जाते। अपितु इस गर्म दशा में वायु के उन्हीं विविध घटकों के वे ही अणु सामान्य से अधिक तीव्रता से प्रकम्पन करते हैं। इस प्रकार इस अवधारणा के अनुसार गर्म हवा भी ठीक उन्हीं घटक गैसों वाली विशुद्ध वायु सिद्ध होती है।

यहाँ विज्ञान में गैस (Gas) तथा वैपर (Vapour) अर्थात् वाष्प के बीच विभेद स्थापित किया जाता है। यदृच्छ गति करने वाले वे स्वतन्त्र अणु–समूह जो सामान्य ताप पर ठोस या द्रव नहीं बनते, उसे गैस कहते हैं[1]। ऑक्सीजन को द्रव बनाने के लिये सामान्य से अत्यन्त न्यून ताप तथा दाब की आवश्यकता होती है। अतः यह गैस है। पर जो सामान्य ताप पर द्रव अवस्था को धारण करती हो, वह स्वतन्त्र अणु दशा में वाष्प होती है। जल के यदृच्छ गति वाले स्वतन्त्र अणु सामान्य ताप पर द्रव बनने की क्षमता रखने के कारण वाष्प कहे जाते हैं। ये इस दशा में दृश्य नहीं हो सकते। अतः विज्ञान में वाष्प को दृश्य नहीं माना जाता। कोहरा इत्यादि में जल के अणु–समूह दृश्य होते हैं। अतः इसे Vapour या वाष्प नहीं माना जाता है। विज्ञान में गैस का ही एक उपभेद वाष्प है। अतः वाष्प में गैस की सभी विशेषताएँ वर्तमान होती हैं। इस प्रकार Vapour का सही अर्थ वह वाष्प है जो दृश्य नहीं तथा जिसमें स्वतन्त्र जलाणु द्रव की अपेक्षा अधिक दूरी रखते हुए यदृच्छ गति करते हैं। इस दृष्टि से कोहरा दृश्य होने से वाष्प नहीं, अपितु वहाँ असंख्य नन्हीं बूँदें (Droplets) उपस्थित होती हैं[2]। ये बादलों की बूँदों की अपेक्षा अधिक नन्हीं होने से अधिक सूर्य–क़िरणों को अपने में समाहित कर पाती हैं। अतः बादलों की तुलना में कोहरा प्रायः अधिक घना प्रतीत होता है[3]।

---

1. 'Gas' = any airlike or completely elastic fluid (especially one that does not become liquid or solid at ordinary temperatures, other gases being usually called 'vapoures').

—Oxford Dictionary of Current English

2. Water vapour is absolutely transparent and colourless. It is invisible just like air. The white fog that is popularly known as 'vapour' is really a multitude of water-droplets.

—Fun with maths and physics, Page 125.

3. The reason fogs often seem denser than clouds is that the droplets are smaller in a fog. A large number of small drops absorb more light than a smaller number of large drops.

—Tell me why, London, Page 48.

प्रस्तुत तुलना का संक्षेप इस प्रकार है– क. दर्शन के अनुसार कोहरा विशुद्ध वायु नहीं है, वह वाष्प है। विज्ञान के अनुसार भी कोहरा वायु का अनिवार्य घटक नहीं। पर वह दृश्य होने से Vapour नहीं है। ख. दर्शन के अनसार संघनन से पूर्व ओस के अदृश्य स्वतन्त्र जल–कण भी वायु नहीं, वह वाष्प है। विज्ञान के अनसार ये अदृश्य स्वतन्त्र जलाणु वाष्प हैं, साथ ही ये वायु का अनिवार्य घटक हैं। इन दोनों मतभेदों को अन्य शब्दों में यों कह सकते हैं कि दर्शन के अनुसार दृश्य तथा अदृश्य जलकण–क्रमशः कोहरा तथा ओस दोनों विशुद्ध वायु नहीं। अपितु दोनों वाष्प हैं। विज्ञान में कोहरा वायु का अनिवार्य घटक नहीं। साथ ही वाष्प भी नहीं है। पर ओस जल–कण के रूप में संघनन से पूर्व वाष्प है तथा वायु का अनिवार्य घटक भी है। ग. दर्शन के अनुसार गर्म हवा में तेजस् के अणु मिश्रित होने से यह विशुद्ध वायु नहीं। विज्ञान के अनुसार तेजस् के कोई अतिरिक्त अणु अमान्य होने से इस वायु में वे ही अनिवार्य घटक उपस्थित हैं, कोई अतिरिक्त मिश्रण नहीं है।

२. दर्शनशास्त्र के अनुसार वायु में नियमित रूप से गन्ध गुण नहीं होता। अतः सुगन्धित वायु में तिर्यग्गति करते हुए गन्ध वाले कण भी वायु नहीं है। अपितु इसमें गन्ध वाले पृथिवी के कणों का मिश्रण है। ऐसी दशा में इन कणों का कठिन या मृदु स्पर्श उपलब्ध नहीं होता। यद्यपि इस प्रकार का स्पर्श पृथिवी की अपनी विशिष्टता या पहचान मानी गई है। फिर भी यहाँ इस गुण की 'स्वरूप योग्यता' मानते हुए इन कणों को पार्थिव माना जाता है। यदि किसी वस्तु में किसी गुण के प्रभाव को प्रदर्शित करने की स्वरूपतः क्षमता हो, पर वह सूक्ष्म होने से उस प्रभाव को प्रकाशित न कर पा रहा हो तो उसमें उस गुण की स्वरूपयोग्यता मानी जाती है। यहाँ भी सुगन्धित पुष्पकणों में मृदु–स्पर्श की स्वरूपयोग्यता होने से यह पार्थिव ही है, वायवीय नहीं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार किसी गैस के लिये उसमें गन्ध गुण होना या न होना अनिवार्य नहीं है। अपितु उनकी परिभाषा के अनुसार अणुओं की स्वतन्त्र यदृच्छ गति वाला होना आवश्यक है। इस प्रकार तीखी गन्ध वाली क्लोरीन भी 'गैस' (Chlorine gas) के रूप में मान्य है।

इस विवरण से प्रकट है कि दर्शन के अनुसार गन्ध गुण के साथ दृश्य या अदृश्य मदृ–कठोर स्पर्श का अनिवार्य सहभाव होता है तथा इन गुणों वाला पदार्थ अनिवार्यतः पृथिवी ही होता है। पर विज्ञान के अनुसार ऐसा कोई सहभाव नहीं होता। हर गुण वाले पदार्थ के अणु अपने उस विशेष गुण को न छोड़ते हुए ठोस,

द्रव तथा गैस इन तीनों अवस्थाओं को (परिभाषानुसार मृदु–कठोर स्पर्श को रखते हुए या छोड़ते हुए) धारण कर सकता है[1]। इस प्रकार गन्ध–विहीन जल हिम दशा में सचमुच ठोस है (भ्रान्त नहीं– जैसा कि दार्शनिक मानते हैं।) तथा गन्ध वाली क्लोरीन यदृच्छ गति वाले अणुओं की दशा में होने से सचमुच गैस है।

यहाँ पर दार्शनिक कह सकते हैं कि क्लोरीन में गन्धवती पृथिवी के कण मिले हुए हैं। पर ऐसा है नहीं। क्लोरीन एक तत्त्व है। इसमें अन्य किन्हीं अणुओं का मिश्रण न करने पर भी Cl_2 रूप वाली सर्वथा विशुद्ध क्लोरीन में भी तीक्ष्ण गन्ध तथा हरा, पीला रूप पाया जाता है। दर्शन के अनुसार इसे वायु नहीं कह सकते तथा गन्धादि गुण होने पर भी इसे पार्थिव भी नहीं कह सकते। क्योंकि यह अपने सामान्य ताप तथा दाब पर सदा तिर्यग्गति में ही रहती है। इसका पृथिवी के समान कभी कठिन मृदु स्पर्श होता ही नहीं। दर्शन में भी माना है कि जिस वस्तु में जिस गुण की स्वरूप–योग्यता हो, उसे किसी न किसी परिस्थितिं में उस योग्यता के फल को अवश्य प्रदर्शित करना चाहिये। अन्यथा उसे स्वरूपयोग्य नहीं माना जा सकता। यहाँ भी इस क्लोरीन के कभी कठिन–मृदु स्पर्श प्रदर्शित न करने के कारण इसे पार्थिव नहीं माना जा सकता। विज्ञान के अनुसार इसे गैस के अन्तर्गत मानना होगा।

मतभेद का कारण– भारतीय दर्शन तथा विज्ञान में उपर्युक्त प्रकार के मतभेद का मौलिक कारण उनकी अपनी२ विशिष्ट पद्धति है। दर्शन शास्त्र के अनुसार पृथिवी, जल, वायु आदि अलग२ तत्त्व हैं, जिनमें क्रमशः कठिन–मृदु स्पर्श, द्रवत्व तथा तिर्यग्गति नियमित रूप से रहते हैं। ये किसी भी अवस्था में अपने२ द्रव्यत्व के साथ२ अपने२ इन गुणों को खोते नहीं हैं। अब यदि किसी द्रव्य में किसी अन्य का गुण देखा जावे तो उसमें उस अन्य द्रव्य का मिश्रण कहा जावेगा। अगर किसी अवस्था में स्वयं उसका गुण न देखा जावे तो उसमें उस गुण की स्वरूपयोग्यता कही जावेगी। उदाहरण के लिये यदि वायु में पृथिवी का गन्ध गुण देखा जावे तो उसमें पार्थिव कणों का मिश्रण है। बर्फ में द्रवत्व न देखे जाने पर उसमें द्रवत्व की स्वरूपयोग्यता है। पर क्लोरीन वाले प्रसंग में इसे पृथिवी या वायु दोनों में से किसी के भी अन्तर्गत मानने में समस्या है। इसके कभी भी कठिन–मृदु स्पर्श वाली न होने से इसे पार्थिव नहीं मान सकते तथा गन्धवती होने से वायु नहीं कह सकते। इस प्रकार दर्शन की पद्धति में यह समस्या असमाहित ही है।

1. Molecules of a substance are the same, whether the substance is in a solid, liquid or gaseous state. ----Physics, Page 173.

आधुनिक विज्ञान के अनुसार पृथिवी, जल, वायु कोई भी अलग तत्त्व नहीं। अपितु ये क्रमशः ठोस, द्रव तथा गैस अवस्थाओं के प्रतिनिधिं हैं। ये अलग–२ परिस्थितियों में विविध अवस्थाओं को तथा उस अवस्था को बनाने वाले गुण–धर्म को धारण कर सकते हैं। विश्व की हर वस्तु, चाहे वह किसी भी गन्ध–रूप आदि विशेष गुण की क्यों न हो, वह इन तीनों अवस्था वाली हो सकती है तथा उसकी प्रत्येक अवस्था उस वस्तु की वास्तविकता होती है। अतः हर अवस्था के साथ उसके उन विशेष गुणों का मेल हो सकता है। इसीलिये कोई एक अवस्था अथवा उस अवस्था जनित गुण–धर्म उस तत्त्व या यौगिक की मौलिकता या पहचान नहीं बन सकती। अतः विज्ञान में तत्त्व आदि की परिभाषा अलग ही है। इस प्रकार बर्फ दशा में बर्फ का ठोस होना वास्तविक है तथा अत्यधिक तप्त होकर बहते हुए लोहा में वास्तविक द्रवत्व है।

इंसी प्रकार विश्व की हर विशेष गुण वाली प्रत्येक वस्तु उनके अणुओं के यदृच्छ गतिशील होने पर गैस कही जावेगी। इसलिये वायु की घटक गन्धरहित ऑक्सीजन गैस की तरह गन्ध वाली क्लोरीन भी 'गैस' है। साथ ही यही वायु अथवा उसके ऑक्सीजन आदि घटक स्यन्दन की क्षमता धारण करने पर तत्त्वतः द्रव कहे जाने के योग्य हैं।

वायु द्रव हो सकती है! बड़ा अचरजपूर्ण है यह!! इसका निरूपण अगले परिच्छेद में किया जावेगा।

---

३. हवा की मुट्ठी!
(वायु का घनत्व)

अति प्राचीन काल से मानव को यह अनुभव रहा है कि सर्वत्र फैली हुई हवा को किसी एक जगह पकड़ कर प्रतिबद्ध नहीं किया जा सकता। अत एव यह मुहावरा प्रचलित था कि हवा की मुट्ठी नहीं बन सकती। पकड़ में न आ सकने वाली वस्तु को इस उपमा के द्वारा प्रकट किया जाता था। गीता में अर्जुन द्वारा कहा गया एक सुन्दर श्लोक इस प्रकार है–

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। — भगवद्गीता ६.३४

अर्थात् हे कृष्ण! यह मन अत्यन्त चञ्चल है। इसके निग्रह को मैं उसी प्रकार कठिन मानता हूँ, जिस प्रकार हवा को किसी एक जगह बन्द करना है।

यहाँ यह विचारणीय है कि हवा अपने किस गुण–धर्म के कारण मुट्ठी में बन्द नहीं की जा सकती। वायु के अलावा आकाश एक ऐसा द्रव्य है, जिसे कभी किसी पदार्थ में सीमित नहीं किया जा सकता। सभी दार्शनिक समान रूप से यह मानते हैं कि 'घटाकाश' जैसे प्रयोगों में आकाश को घड़े से परिसीमित बताना तात्त्विक नहीं है, अपितु सर्वथा आरोपित है। आकाश विभु या सर्वव्यार्पक होने से कदापि सीमित नहीं हो सकता।

पर हवा के मुट्ठी में बन्द न हो पाने से हम यह नहीं मान सकते कि यह आकाश के समान गुण–धर्म वाली है। सभी दार्शनिक तथा वैज्ञानिक समान रूप से इसे टुकड़ों में बँट सकने वाली, परिच्छिन्न अथवा सीमित मानते हैं, आकाश के समान असीमित नहीं। न्यायशास्त्र में वायु–सहित मूर्त द्रव्य को आकाश से अलग मानने का कारण ही यह है कि जल, वायु जैसे मूर्त–द्रव्य परिच्छिन्न परिमाण वाले हैं, जबकि आकाश विभु है।

दर्शन–शास्त्र में इस वायु के आकाश से विपरीत अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। बौद्ध दर्शन में रूप–स्कन्ध के अन्तर्गत आने वाले इन्द्रिय–ग्राह्य 'विषय धातु' का एक विशिष्ट गुण 'सप्रतिघ' होना अर्थात् जगह घेरने वाला बताया है[1]। जिस प्रकार बायाँ हाथ कभी भी अपनी जगह पर दाहिने हाथ को नहीं आने

---

१. सप्रतिघा दश रूपिणः। ———अभिधर्मकोश १.२९

दे सकता, उसी प्रकार त्वगिन्द्रिय–गोचर वायु–खण्ड भी अपने स्थान पर दूसरे वायु–खण्ड को आने नहीं दे सकता[1]। अन्य दर्शनों के अनुसार भी अन्य द्रव्यों के समान वायु भी जगह घेरने वाले अणुओं से निर्मित है। अतः वायु में भी यह विशेषता वर्तमान है।

आधुनिक विज्ञान में भी यह मान्य है कि वायु के ऑक्सीजन आदि घटक अनेक अणुओं के समूह होते हैं तथा एक अणु के स्थान पर दूसरा अणु नहीं समा सकता। अतः किसी अणु की अपनी सविशेष गति के द्वारा किसी अन्य अणु के स्थान पर प्रवेश की चेष्टा करने पर वह अन्य अणु शीघ्र ही अन्यत्र जाकर उसके लिये जगह खाली कर देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गैस अथवा वायु की मुट्ठी न बन पाने का कारण यह नहीं कि वायु जगह नहीं घेरती, अपितु यह कि वह आसानी से अन्यों के लिये जगह खाली कर देती है।

वायु की इस विलक्षणता का प्रमुख कारण वायु का ठोस, द्रव पदार्थों की अपेक्षा सबसे विरल घनत्व वाला होना तथा उनका गतिज ऊर्जा वाला होना है। वायु के घटक ऑक्सीजन आदि के अणु एक दूसरे से दृढतापूर्वक संसंजित नहीं, अपितु छितराए हुए रहते हैं। उनमें परस्पर आकर्षण बल नगण्य होता है। ये अणु अपनी तापीय ऊर्जा (thermal energy) के फलस्वरूप निरन्तर यदृच्छ गति में होते हैं। अन्य सभी अणुओं के समान इनके अणु की अन्य अणु से बीच कीं दूरी (intermolecular space) में हवा जैसी कोई चीज नहीं, अपितु सर्वथा शून्य होता है। अतः ये अणु किसी प्रतिरोध के अभाव में सामान्य दशा में अपनी ऊर्जा तथा इस प्रकार अपनी गति को खोते नहीं हैं। इस गति के कारण ही ये अन्य अणु से आकर्षित नहीं, अपितु दूर से ही प्रतिकर्षित होते हैं। ऑक्सीजन का एक अणु अन्य अणु से कम से कम 3.5×10^{-7}cm=35A^0 की दूरी पर होता है। जबकि ऑक्सीजन तथा नांइट्रोजन के अणु का औसत आकार केवल 4A^0 होता है। (1A^0=10^{-8}cm अर्थात् 1 एंग्स्ट्रॉम सेंटीमीटर का १० करोड़वाँ हिस्सा होता है)। इसके आकार की अपेक्षा यह दूरी बहुत अधिक–लगभग १० गुना होती है। ऑक्सीजन का एक अणु अपने आयतन से लगभग १००० गुना अधिक हवा के आयतन में समाता है[2]।

१. प्रतिघो नाम प्रतिघातः। ....स्वदेशे परस्योत्पत्ति– प्रतिबन्धः । यथा हस्तो हस्तेनाहतः।
—उक्त श्लोक पर स्वोपज्ञ भाष्य पृ० ७६

2. Therefore, the average distance between molecules, is ten times as great as the size of molecules. And this, in turn, implies that the average volume of air per molecule is approximately a thousand times as great as the volume of the molecule itself. —Physics for everyone, L.D. Landau, book 2, page 38.

गैस के ये अणु कम से कम इतनी दूरी बंनाए रखते हुए आकाश में मुक्त रूप से संचरण करते रहते हैं। इनकी संख्या अत्यधिक होती है। एक घन सेंटीमीटर हवा में सामान्य ताप तथा वायुमण्डलीय दाब पर लगभग 2.5×10^{19} अणु रहते हैं। इतनी विशाल संख्या में कोई भी अणु अपनी सीधी गति बनाए नहीं रख सकता। क्योंकि एक अणु दूसरे को टक्कर देते हुए उसे वहाँ से हटने को मजबूर करता है। यहाँ टक्कर का अर्थ एक दूसरे को छूकर टकराना नहीं है। अणु परमाणु के संसार में इस प्रकार का छूना कभी नहीं होता, जैसा हम दैनिक जीवन में समझते हैं[1]। अपितु गैस का एक अणु अन्य अणु से न्यूनतम $35A^0$ की दूरी से ही प्रतिकर्षण द्वारा विस्थापित हो जाता है। इस प्रकार ये अणु अन्य अणु से दूर हटने की चेष्टा करते हुए अपनी दिशा बदलते रहते हैं। विभिन्न अणुओं का घनत्व तथा उनकी गति के अनुसार उनका माध्य मुक्त पथ अलग–२ होता है। कोई अणु अधिकतम जितनी दूरी तक सीधी दिशा में अपनी गति बनाए रख सकता है, उसे उसका माध्य मुक्त पथ (mean free path) कहते हैं। हाइड्रोजन के अणु का यह पथ $11 \times 10^{-6}cm = 1100A^0$ के बराबर है, जबकि ऑक्सीजन का केवल $5 \times 10^{-6}cm = 500A^0$ के बराबर है। इस प्रकार अधिकतम इतनी दूरी के पश्चात् यह अणु अवश्य ही अपनी गति की दिशा बदलते हुए अन्य के लिये जगह खाली कर देता है। किसी बड़े पिण्ड के आने पर भी यह अन्य दिशा की ओर गतिशील होकर उस स्थान को आसानी से छोड़ देता है। इस प्रकार किसी के अन्दर आसानी से प्रतिबद्ध नहीं होता। इस विवरण से प्रकट है कि गैस की यह विशेषता इसके अणुओं का विरल घनत्व तथा इनकी गतिज ऊर्जा के कारण है।

पदार्थ में घनत्वमूलक स्पर्श (दर्शनशास्त्र)– दर्शन के अनुसार केवल पृथिवी में कठोर स्पर्श तथा मृदु स्पर्श गुण समवेत होता है। गन्धवती पृथिवी के पिण्ड आपस में कठिन तथा कम कठिन बन्धन में बँधे होते हैं। दूसरे शब्दों में उनके अणुओं का अत्यधिक घनत्व तथा आपस में दृढ़ बन्धन होता है। इनके अलावा अन्य किसी में ये कठिन मृदु स्पर्श गुण नहीं हैं[2]। जल में यदि कोई घनत्व

---

१. अणु–परमाणु के सन्दर्भ में आधुनिक भौतिक विज्ञान की व्याख्या ने दर्शनशास्त्र के हजारों वर्षों से चले आ रहे इस विवाद को समाप्त कर दिया है कि परमाणु एक दूसरे को छूते हैं या नहीं। विज्ञान की व्याख्या काश्मीरक बौद्धों की इस मान्यता के लगभग सन्निकट है कि सामान्य जीवन में समझे जाने वाले 'स्पर्श' को परमाणु के सन्दर्भ में लागू नहीं किया जा सकता। द्रष्टव्य– 'किं पुनः परमाणवः स्पृशन्त्यन्योन्यम्? आहोस्विन्न? न स्पृशन्तीति काश्मीरकाः! किं कारणम्? यदि तावत् सर्वात्मना स्पृशेयुर्मिश्रीभवेयुर्द्रव्याणि'– अभिधर्मकोश १.४३ पर स्वोपज्ञभाष्य, पृ. १२१

२. काठिन्यादि क्षितावेव नित्यतादि च पूर्ववत्। ——कारिकावली श्लोक १०४

है तो उसका प्रभाव उसकी विलक्षण स्यन्दन क्रिया के रूप में उपलब्ध होता है। इन स्पर्श गुणों के रूप में नहीं। जल में केवल शीतल स्पर्श रहता है। वायु में उष्ण, शीत स्पर्श से भिन्न अथवा पृथिवी, जल, तेज में उपलब्ध स्पर्श से भिन्न विजातीय स्पर्श रहता है[१]। इस प्रकार पृथिवी में उपलब्ध होने वाला, घनत्व से जनित कठोर या मृदु स्पर्श इस वायु में नहीं रहता। यह सिद्धान्त इस चिन्तन पर अवलम्बित है कि किसी पिण्ड के प्रवेश पर आसानी से जगह छोड़ देने वाला तथा इस प्रकार मुट्ठी आदि में प्रतिबद्ध न होने वाला वायु–द्रव्य मृदु–कठोर स्पर्श नहीं रख सकता।

पदार्थ में घनत्वमूलक स्पर्श (विज्ञान)– विज्ञान के अनुसार विविध घनत्व वाले अणुओं से निर्मित पदार्थ की ठोस, द्रव तथा गैस इन तीनों अवस्थाओं में कठोर–मृदु स्पर्श अलग–२ मात्रा में उपलब्ध होता है। ठोस पदार्थों में यह स्पर्श अत्यन्त स्पष्ट है। हाथ का टेबुल से संयोग होने पर टेबुल के परमाणु विद्युच्चुम्बकीय बल के द्वारा तथा इनसे निर्मित टेबुल के अत्यन्त घने तथा ज्यामितीय ढंग से व्यवस्थित अणु भी अपने प्रतिकर्षण बल के द्वारा हमारे हाथ के अणुओं को प्रतिकर्षित करते हुए इसके गुरुत्वाकर्षण बल का दृढता से विरोध करते हैं तथा इस प्रकार स्वयं सम्पीड़ित होने से बचते हैं तथा हाथ को धँसने नहीं देते। अणुओं के इस प्रभाव को हम कठोर स्पर्श के रूप में अनुभव करते हैं।

द्रव अवस्था वाले जल आदि में ठोस की अपेक्षा अणुओं की दूरी कुछ बढ़ जाती है तथा इस प्रकार इनका घनत्व कुछ कम हो जाता है। इन विरल घनत्व वाले अणुओं के प्रभाव से मृदु स्पर्श उपलब्ध होता है।

वायु में सापेक्षतः अधिक दूरी पर छितराए हुए विरलतर घनत्व वाले अणुओं के प्रभाव से हम इसके मृदुतर स्पर्श का अनुभव करते हैं। यदि हम किसी उपाय से इनके अणुओं के घनत्व को बढ़ाते जायँ तो धीरे–२ मृदु से विपरीत विनम्र कठोर स्पर्श के अलग–२ स्तरों का अनुभव करते हैं। किसी ट्यूब आदि में वायु को सम्पीड़ित करने पर तथा इस प्रकार उसका आयतन कम करने पर इसके अणुओं का घनत्व तथा दबाव उतना ही गुना बढ़ जाता है। इस प्रकार यह दबाव आयतन के व्युत्क्रमानुपात में बढ़ता है। दबाव बढ़ने का अर्थ यह है कि इस समय गैस के अणु अधिक तीव्रता से किसी बर्तन की दीवार से टकराते हैं। इसी टकराहट के बल से कोई गुब्बारा फूल जाता है, इंजन का पिस्टन धकेला जाता

२. अपाकंजोऽनुष्णाशीतस्पर्शस्तु पवने मतः। —कारिकावली श्लोक ४२
विजातीयस्पर्शेन .... च वायोरनुमानात्। —उसी श्लोक पर मुक्तावली

है तथा हवा से भरा ट्यूब कठोरता का आभास कराता है। अणुओं का यह घनत्व, दबाव अथवा इनकी गतिज ऊर्जा प्रयुक्त बल जितना अधिक बढ़ता है, उतना ही अधिक कठोरता की प्रतीति होती है। इस प्रकार यहाँ दबाव तथा बल की वृद्धि कठोरता में वृद्धि का समानुपाती होती है। दृढ पिण्डों की कठोरता की प्रतीति में भी अणु–परमाणु के अनेक बल कार्यशील होते हैं। इससे स्पष्ट है कि कोई भी बल जो हमारे हाथ के बल का विरोध करे वह कठोर स्पर्श के सजातीय स्पर्श का अनुभव करा सकता है– चाहे वह बल पृथिवी का हो या वायु का हो। यद्यपि गैस के छितराए हुए अणुओं में घनत्व बढ़ाने पर भी इनमें परस्पर संसंजक बल न होने से ये किसी दृढ़ पिण्ड के बीच में आने का विरोध तो नहीं कर सकते। साथ ही ये दृढ़ पिण्ड़ के समान अतिस्पष्ट कठोरता का अनुभव भी नहीं करा सकते। पर इतने मात्र से दर्शन की मान्यता के अनुरूप इनकी कठोर स्पर्श की किसी मात्रा का निवारण नहीं किया जा सकता। अपितु यह कहना अधिक उचित है कि वायु के अणुओं में गतिज ऊर्जा प्रयुक्त बल के द्वारा कठोर–मृदु जाति का कोई निम्नस्तरीय स्पर्श उपस्थित होता है, जो कि दबाव बढ़ाने के साथ बढ़ता जाता है। किसी हवा भरे ट्यूब के स्पर्श से हम वायु में इसका ही अनुमान करते हैं तथा तेज हवा चलने पर इसी जाति वाले विलक्षण स्पर्श का अनुभव करते हैं।

घनत्व, दाब तथा ताप में परिवर्तन से गैसों का रूपान्तरण– वायु में सर्वथा स्पष्ट रूप से कठोर या मृदु स्पर्श की उपलब्धि तब हो सकती है, जब इसे ठोस या द्रव रूप में बदल दिया जाय। अथवा विज्ञान की भाषा में यों कहें कि जब इसके अणुओं की परस्पर दूरी को कम करके इनमें दृढ़ संसंजक बल उपस्थित कर दिया जाय। पर सामान्य उपायों से इसके अणुओं का घनत्व अथवा दबाव बढ़ाकर यह बल नहीं लाया जा सकता तथा इस प्रकार वायु को द्रव नहीं बनाया जा सकता। मजबूत से मजबूत ट्यूब में आप चाहे जितनी हवा भरें, वह अपने गैस रूप में ही रहेगी। १९वीं सदी के पूर्वार्ध तक भौतिक वैज्ञानिक इसमें बहुत दाब बढ़ाकर भी इसे द्रव में परिवर्तित करने में सफल नहीं हो सके थे। क्योंकि गैस के अणुओं में गतिज ऊर्जा या तापीय ऊर्जा के फलस्वरूप इनके तापीय गति (thermal motion) में होने के कारण इनमें परस्पर आकर्षण बल उत्पन्न करना सम्भव नहीं हुआ था। अतः बाद में जाना गया कि किसी भी गैस को द्रव बनाने के लिये इनकी ऊर्जा को क्षीण करना अथवा ताप कम करते हुए इन्हें एक क्रान्तिक ताप में लाना आवश्यक होता है। प्रकृति में हर पदार्थ की अवस्था परिवर्तन के लिये अपना अलग–२ क्रान्तिक दाब (critical pressure) तथा क्रान्तिक ताप (critical temperature) सुनिश्चित है। इन गैसों का क्रान्तिक ताप

बहुत कम है। ऑक्सीजन का क्रान्तिक ताप –119°c तथा हाइड्रोजन का –240°c है। शून्य डिग्री सेल्सियस ताप पर पानी हिम बन जाता है। इससे ऋण 240 डिग्री तापमान की शीतलता सचमुच अकल्पनीय है। इस क्रान्तिक ताप पर इन्हें द्रव बनाया जा सकता है। इतने कम क्रान्तिक ताप को प्राप्त करना विज्ञान की बहुत बड़ी विजय रही है! इस उपाय से सन् १८८४–८५ में पहली बार द्रव हाइड्रोजन प्राप्त की गई थी। इसके पश्चात् सन् १९०८ में विश्व के पदार्थों में सबसे कम क्रान्तिक ताप वाले 'हीलियम' को भी द्रव में परिवर्तित कर लिया गया था[1]।

इस महान् घटना के पश्चात् भौतिक विज्ञान में यह सिद्धान्त सुस्थिर हो गया कि विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिसे ठोस, द्रव तथा गैस अवस्थाओं में परिवर्तित न किया जा सके। इस सिद्धान्त से आज विज्ञान जगत् में 'लौह वाष्प तथा ठोस हवा' (iron vapour and solid air) का मुहावरा प्रचलित है। इससे अब यह सर्वथा स्पष्ट है कि गैस अणुओं के घनत्व तथा दबाव को अधिकाधिक बढ़ा कर अधिकाधिक कठोर–जातीय स्पर्श तथा एक सुनिश्चित दाब तथा क्रान्तिक ताप में हर गैस को द्रव तथा ठोस बनाकर स्पष्ट मृदु–कठोर स्पर्श प्राप्त किया जा सकता है।

पर बात चली थी हवा की मुट्ठी सें! सामान्य जीवन में हम इतने ऊँचे दाब तथा इतने कम ताप की कल्पना नहीं कर सकते। इतने कम क्रान्तिक ताप को तो हमारी मुट्ठी छू भी नहीं सकती! अतः जहाँ तक मुहावरे का प्रश्न है यह अब भी सर्वथा सच है कि सामान्य ताप पर कोई हवा की मुट्ठी नहीं बाँध सकता!!

---

1. **Finally, the last stronghold was taken after another twenty years: helium, the substance with the lowest critical temperature was converted into a liquid in 1908 by Heike Kamerlingh Onnes in Leiden, Holland. The 70th anniversary of this important scientific achievement was widely celebrated.**

——Physics for everyone L.D. Landau, Page 110.

४. हवा का अनुभव होता है या नहीं!

इस शीर्षक को देखते ही पाठक कह उठेंगे कि यह प्रश्न ही गलत है। हवा के शीतल, मृदुल स्पर्श का अनुभव किसे नहीं होता। संस्कृत के एक मुहावरे के अनुसार यह तो *'आपण्डितम् आपृथग्जनं परिवेदितो विषयः'* है! अर्थात् विशेषज्ञ से लेकर सामान्य मनुष्य तक सभी इसका भली प्रकार अनुभव करते हैं। फिर भी थोड़ा गम्भीरता से दर्शन–शास्त्र की रीति से इस पर विचार करते हैं।

न्याय दर्शन के अनुसार पृथिवी, जल, तेज, वायु आदि द्रव्य हैं तथा इनमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श आदि गुण समवेत हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ द्रव्य के साथ संयोग के माध्यम से इनके गुणों का प्रत्यक्ष करती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। जहाँ दो ज्ञानेन्द्रियाँ एक ही द्रव्य का प्रत्यक्ष करती हैं, उस द्रव्य के प्रत्यक्ष के विषय में भी सन्देह का कोई अवकाश नहीं रहता। जैसे आँखों से घट–प्रत्यक्ष के पश्चात् त्वचा से उसका ही प्रत्यक्ष करते हैं। तभी 'मैने जिस घड़े को देखा, उसी को छूता हूँ' इस प्रकार बोध होता है। यह बोध निश्चय ही द्रव्य–विषयक है। क्योंकि दो इन्द्रियों से एक विशेष गुण का बोध नहीं होता। आँखों से रूप का ही तथा त्वचा से स्पर्श का ही बोध होता है। पर यहाँ दो इन्द्रियों से एक–विषयक बोध होने से यह एक–द्रव्य–विषयक ही है, ऐसा सिद्ध होता है। इस रीति से पृथिवी, जल, तेज द्रव्य के प्रत्यक्ष के विषय में कोई सन्देह नहीं होता।

अन्य सामान्य गुणों, जैसे संख्या, परत्व, अपरत्व द्वारा भी इन द्रव्यों का असन्दिग्ध रूप से प्रत्यक्ष हो जाता है। जैसे एक घट, दो घट आदि संख्या–युक्त घट का बोध होता है। यह संख्या गुणों की नहीं हो सकती। क्योंकि गुण में कोई गुण नहीं रहता। अतः संख्या वाले द्रव्य का प्रत्यक्ष होने पर ही हम उसे कोई संख्या प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार संख्या का बोध होने पर उस संख्या वाले द्रव्य का भी प्रत्यक्ष हो गया, यह आसानी से माना जा सकता है।

पर इन दोनों उपायों से वायु द्रव्य के प्रत्यक्ष के विषय में सन्देह है। क्योंकि वायु में रूप न होने से आँखों से इसके रूप तथा इसके माध्यम से द्रव्य का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। अपितु केवल एक त्वचा के द्वारा ही इसका प्रत्यक्ष हो सकता है। इस प्रकार केवल एक इन्द्रिय से वायु द्रव्य के प्रत्यक्ष की स्थिति में यह सन्देह बना ही रहता है कि इसके स्पर्श आदि से भिन्न किस आकार प्रकार को वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष माना जावे। इसके साथ ही एक वायु, दो वायु जैसे प्रयोग सुनने में नहीं

आते। अतः संख्या के माध्यम से भी वायु–द्रव्य के प्रत्यक्ष मानने में सन्देह बना रहता है। इसलिये इस विषय में विद्वानों में मतभेद उपलब्ध होता है, जो इस प्रकार है–

वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता (प्राचीन न्याय)– प्राचीन न्याय वैशेषिक के विद्वान् त्वगिन्द्रिय से वायु के स्पर्श आदि गुणों के अनुभव के पश्चात् इनसे अतिरिक्त किसी द्रव्य के आकार को स्पष्टतः न बता सकने की स्थिति में वायु–द्रव्य का त्वचा से प्रत्यक्ष नहीं, अपितु इसे स्पर्श लिंग से अनुमेय बताते हैं[1]। क्योंकि विलक्षण अनुष्णाशीत स्पर्श किसी द्रव्य में ही समवेत हो सकता है। पर अन्य ८ द्रव्यों में इसका समवेत होना सम्भव नहीं है। अतः इस विलक्षण गुण के आधार के द्वारा अनुमान से अतिरिक्त वायु–द्रव्य की सिद्धि करते हैं[2]।

इस सिद्धान्त के स्थिर हो जाने पर वे ज्ञानेन्द्रियों से ग्रहण किये जाने वाले सभी मूर्त–द्रव्यों के प्रत्यक्ष में लाघव हेतु से केवल एक 'रूप' गुण को कारण बताते हैं[3]। इसकी व्याख्या में उनका कहना है कि पृथिवी, जल, तेज इन तीन में 'रूप' गुण के कारण इस गुण वाले इन द्रव्यों का प्रत्यक्ष होता है। पर वायु में 'रूप' नामक कारण के न होने से त्वगिन्द्रिय से वायु–द्रव्य का संयोग होने पर भी उसका प्रत्यक्ष नहीं होता।

वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष होता है (नवीन न्याय)– नवीन न्याय के विद्वान् विपरीत मत रखते हुए 'वायुं स्पृशामि' इस अनुभव के आधार पर वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष मानते हैं। उनका कहना है कि वायु–द्रव्य का कोई स्पष्ट आकार न बता पाने पर भी इस अनुभव का कोई स्वरूप तो होता ही है। इस अनुभव के यथार्थ होने से वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष सर्वथा मान्य है।

साथ ही चक्रवात आदि की दशा में पूर्व तथा पश्चिम से अलग–२ आने वाली वायु का 'पर वायु', 'अपर वायु', 'एक वायु', 'दो वायु' इत्यादि के रूप में भी

---

१. कारिकावली श्लोक ५४ में मुक्तावलीकार 'इत्याहुः' के द्वारा नवीन न्याय के मत में अरुचि प्रदर्शित करते हुए इसी प्राचीन मत का समर्थन करते हैं।

२. अनुभूयमानः स्पर्शः क्वचिदाश्रितः स्पर्शत्वादित्यनुमानेन ....अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वसिद्धौ अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वेन वायुरपि.........सिद्ध्यति। —वैशेषिक सूत्र २.१.१६ पर विवृति।

३. त्वगिन्द्रियजन्येऽपि द्रव्यप्रत्यक्षे रूपं कारणम्। तथा च बहिरिन्द्रिय– जन्यद्रव्यप्रत्यक्षे रूप कारणम्। —कारिकावली श्लोक ५४ पर मुक्तावली। साथ ही— 'वायोः प्रत्यक्षतासन्देहेन लाघवान्मूर्तप्रत्यक्षावच्छिन्नं प्रति रूपत्वेनैव कारणत्वमुचितम्।

—उक्त प्रसंग पर 'दिनकरी' टीका।

अनुभव होता है। ये परत्वादि गुण वायु द्रव्य में ही अवस्थित होते हैं। वायु का अनुभव किये बिना उनमें एकत्वादि संख्या का अवबोध नहीं किया जा सकता। अतः इन गुणों के माध्यम से भी वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष यथार्थ सिद्ध होता है।

इस मान्यता की उपस्थिति में सभी द्रव्यों के प्रत्यक्ष में रूप को कारण मानना समीचीन नहीं हो सकता। क्योंकि वायु में 'रूप' नामक कारण के न रहने पर भी वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष होता है। यदि थोड़ी देर के लिये वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष न भी मानें, तो भी 'इसमें रूप न होने के कारण वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं' ऐसा प्राचीन न्याय वालों का कथन तर्कसंगत नहीं हो सकता। आखिर रूप का न होना त्वगिन्द्रिय से स्पर्श के माध्यम से ग्राह्य द्रव्य के प्रत्यक्ष का किस प्रकार निवारक हो सकता है। पैर कटने के कारण आँख से देखने की क्रिया का किस प्रकार निषेध हो सकता है!!

अतः अन्वय–व्यतिरेक से यही कहना उचित है कि आँखों से रूप के माध्यम से होने वाले द्रव्य–प्रत्यक्ष में 'रूप' तथा त्वचा से स्पर्श के द्वारा द्रव्य–प्रत्यक्ष के लिये 'स्पर्श' कारण होता है[1]। इस कार्य–कारण–भाव के अनुसार स्पर्श गुण के द्वारा वायु–द्रव्य का प्रत्यक्ष अवश्य होता है, यह मानना चाहिये[2]।

वायु के गुणों का प्रत्यक्ष (दर्शन)– दर्शन के अनुसार शुद्ध वायु गन्ध,

---

१. नवीनास्तु बहिरिन्द्रियजन्य–द्रव्य–प्रत्यक्षे न रूपं, न वा स्पर्शः कारणं, प्रमाणाभावात्। किन्तु चाक्षुषप्रत्यक्षे रूपं, स्पार्शनप्रत्यक्षे स्पर्शः कारणम्–अन्वयव्यतिरेकात्। – कारिकावली श्लोक ५४ पर मुक्तावली।

२. न्याय–शास्त्र में द्रव्य की अपनी विशिष्ट मान्यता के कारण भी यह सन्देह बना रहता है। न्याय के अनुसार इन्द्रियग्राह्य गुणों का आधार द्रव्य होता है। बौद्ध दार्शनिक इस पर सदा से यह प्रश्न उठाते रहे हैं कि किसी पिण्ड के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, उसकी लम्बाई, चौड़ाई, गुरुत्व आदि सभी इन्द्रियजन्य गुणों के अनुभव के पश्चात् आखिर क्या बचता है, जिसे हम अलग से 'द्रव्य' कह कर पुकारें? इस तथ्य को महान् दार्शनिक जॉन लॉक द्वारा प्रस्तुत एक रोचक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं– *"मान लीजिये, A एक वस्तु है, जिसमें Q_1, Q_2, Q_3, Q_4, Q_5 ये पाँच गुण पाए जाते हैं। अब यदि हम कहते हैं कि A Q_1, Q_2, इत्यादि है। (जैसे सेव लाल, रसीला इत्यादि है)। यहाँ इसके दो वैकल्पिक अर्थ हो सकते हैं। प्रथम A अपने पाँच गुणों का $Q_1 - 5$ का समुच्चय है। ऐसी दशा में इसे A अलग नाम देना द्विरुक्ति होगी। द्वितीय विकल्प के अनुसार इसका अर्थ यह होगा कि A नामक वस्तु $Q_1 - 5 + A$ है, जिसमें X नामक ऐसा तत्त्व है जिसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। क्योंकि इन्द्रिय–ग्राह्य सभी गुणों का तो $Q_1 - 5$ के अन्तर्गत ही निरूपण हो चुका। इस प्रकार दोनों ही विकल्प असमाधेय हैं। इससे सिद्ध है कि वास्तव में सेव का 'विज्ञान एक 'मिश्र विज्ञान' है, जिसे हम लौकिक जीवन में सदा 'सरल–विज्ञान' के रूप में लेते हैं।"* (द्रष्टव्य Essays, John Locke 1, 3, 19)

रस, रूप गुणों से सर्वथा विरहित होती है। अतः कोई भी गन्ध वाली गैस तथा रूप, रंग वाला धुँआ आदि विशुद्ध वायु की श्रेणी में नहीं आते। ऐसे प्रत्यक्ष के समय वायु में गन्ध आदि गुणों वाले पृथिवी के अनेक कणों का मिश्रण होता है।

साथ ही वायु में मृदु–कठोर स्पर्श भी नहीं रहता। यह स्पर्श केवल पृथिवी में पाया जाता है। इसमें शीत, उष्ण स्पर्श भी नहीं रहता। यह गुण क्रमशः जल तथा तेज में ही समवेत होता है। अतः उष्ण–शीत स्पर्श से भिन्न कोई विलक्षण स्पर्श वायु में रहता है।

अब अगर वायु में शीतल स्पर्श उपलब्ध हो तो मानना होगा कि इसमें शीत–स्पर्श वाले जल–कण मिश्रित हैं। इसी प्रकार उष्ण स्पर्श वाली वायु उपलब्ध होने पर उसमें तेज–कणों का मिश्रण मानना चाहिये। इन दोनों स्पर्शों से भिन्न सर्वथा अनुष्णाशीत स्पर्श का अनुभव ही वायु के विशद्ध गुण का अनुभव कहा जावेगा।

गैस के गुणों का प्रत्यक्ष (विज्ञान)– आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी वायु के अधिकांश घटकों में गन्ध आदि गुण नहीं होते। वायु में सर्वाधिक उपलब्ध होने वाली नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन गैसें सर्वथा गन्धरहित, स्वादरहित तथा रंगरहित मानी जाती हैं। पर बहुत कम अनुपात में उपलब्ध कार्बन डाइ ऑक्साइड जैसे यौगिक पदार्थों की गैसें गन्धपूर्ण होती हैं। वायु की घटक से भिन्न 'क्लोरीन' आदि जैसे तत्त्वों की गैसें भी गन्धपूर्ण उपलब्ध होती हैं।

तेज चलने वाली वायु में मृदु–कठोर जातीय कोई स्पर्श हो सकता है, इसे तीसरे परिच्छेद में विस्तार से प्रकट किया जा चुका है। विज्ञान में अतिरिक्त रूप

वास्तव में होता यही है कि इन गुणों के अनेकानेक प्रकार हमें उपलब्ध होते हैं। पर एक सुनिश्चित रूप, रस, गन्ध आदि का एक विशिष्ट सहभाव किसी पिण्ड में देखने में आता है। उस रूप को अलग देखने पर भी उस निश्चित सहभाव को हम अन्यत्र नहीं देखते। अतः उसे हम अलग नाम दे देते हैं तथा उसे अलग द्रव्य के रूप में देखना चाहते हैं। यदि इस सहभाव को हम दो इन्द्रियों के द्वारा देख सकें तब तो निश्चय ही इसे अतिरिक्त द्रव्य प्रदान करने के लिये अधीर हो उठते हैं। इस सहभाव को हम अलग संख्या भी प्रदान करते हैं तथा इस उपाय से भी 'द्रव्य' के प्रत्यय को परिपुष्ट कर लेते हैं।

पर जिस वस्तु के केवल कुछ सीमित गुणों का ही प्रत्यक्ष हो, दो इन्द्रियों के द्वारा द्रव्य–प्रत्यक्ष की पुष्टि न हो पाती हो, उसका स्पष्ट आकार दृष्टिगोचर न हो सकने की स्थिति में उसमें संख्या प्रदान करने में भी कठिनाई होती हो, उस द्रव्य के प्रत्यक्ष में सन्देह बना ही रहता है। वास्तव में वायु–द्रव्य के प्रत्यक्ष में अलग२ मतों का यही रहस्य है।।

से तेजस् को न मानने के कारण वायु स्वयं उष्ण स्पर्श को धारण कर सकती है। इसी प्रकार शीत स्पर्श केवल जल की विशिष्टता नहीं है। वायु के अतिनिम्न क्रान्तिक ताप उत्पन्न करने में जल के मिश्रण का सहयोग नहीं है। अतः विशुद्ध वायु की घटक ऑक्सीजन आदि गैसें भी शीत स्पर्श वाली हो सकती हैं।

यद्यपि यह सर्वथा सच है कि सामान्य जीवन में उपलब्ध होने वाली शीतल वायु जल या जल वाष्प (water vapour) के मिश्रण का ही परिणाम होती है। अतः सामान्य दशा में वायु में इनका मिश्रण बताना सर्वथा सच है।।

---

५. और दीपक जल गया!

(वायु का ज्वलन–सहकारित्व)

अति प्राचीन काल से रात्रि के घने अन्धकार को भगाने के लिये दीपक जलाने की परम्परा रही है। भारत तथा चीन में इसके लिये तिल, सरसों, एरण्ड आदि स्नेहन पदार्थों का उपयोग किया जाता रहा है।

इस दीपक के लिये बढ़िया बत्ती, तेल आदि का प्रयोग करने पर भी हवा का चलना इसके जलने में सबसे बड़ी बाधा रही है। इससे यह बार–२ बुझता रहता था। लोगों के सामान्य जीवन गें इसका इस प्रकार बार–२ बुझना एक विशेष अनुभव या कटु यादगार जैसा था। अतः इसके लिये अलग शब्द का प्रयोग चल पड़ा था। महावैयाकरण पाणिनि ने सूचना दी है कि हवा रुकने के लिये 'निर्वातो वातः', पर दीपक बुझने के लिये 'निर्वाणः प्रदीपः' यह प्रयोग होता है[1]।

कभी हवा न चलने पर दीपक का सीधे जलते हुए बढ़िया प्रकाश करना एक सुखद अनुभूति थी। उपनिषद् आदि में इसका उपमालंकार से प्रयोग करते हुए मन की एकाग्रता को समझाया है। गीता में एक सुन्दर श्लोक इस प्रकार है–

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः। ——भगवद्गीता ६.१६

अर्थात् जिस प्रकार वायुरहित स्थान में दीपक चलायमान नहीं होता, वही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए एकाग्र चित्त की कही गई है।

इस छोटे से दीपक के बढ़िया जलने के लिये शीशे का उपयोग सीखने में मानव जाति को हजारों वर्ष बिताने पड़े हैं। हम आधुनिक जीवन में जिन्हें बहुत सामान्य वस्तु समझते हैं, उनके निर्माण में भी मनुष्य को कितना परिश्रम करना पड़ा है, इसका यह एक छोटा सा नमूना है! यों भारत सहित विश्व के अन्य भागों में काँच की विविध वस्तुओं तथा शीशे के कलात्मक बर्तनों का प्रयोग अति प्राचीन काल से सीख लिया गया था। महाभारत के समय में स्वच्छ मणिभीय काँच (Crystal lens) से सूर्य किरणों को संघनित करके आग पैदा करने की विधि जान ली गई थी। इसे सूर्यकान्त या सूर्यकान्त मणि कहा जाता था[2]। दर्शन में इसके

१. निर्वाणोऽवाते। ————अष्टाध्यायी ८.२.५०

२. जातिः स्मृतिरयस्कान्तः सूर्यकान्तोऽम्बुभक्षणम्। ——महाभारत, शान्तिपर्व १२.२१८.२६
सूर्यकान्तयोगादेव सूर्यरश्मयोऽग्निं सुवते, न पृथिव्यन्तरयोगात्, तद्वत्।
——उक्त श्लोक पर नीलकण्ठी टीका।

आधार पर गम्भीर शास्त्रार्थ[1] तथा काव्य में सुन्दर रचनाएँ की जाती रही हैं। महाकवि कालिदास ने एक सुन्दर श्लोक में कहा है कि ताडका को मारने वाले श्री राम ने मुनि से ऐसी चमकती ज्योति वाले हथियार प्राप्त किये, जैसी ज्योति सूर्य से किरणों को प्राप्त करके लकड़ी जला देने वाली सूर्यकान्त मणि से प्राप्त होती है[2]। सुनते हैं २४७ ईसा पूर्व में निर्मित विश्व के महान्तम आश्चर्यों में से एक सिकन्दरिया के प्रकाश–स्तम्भ में एक अतिविशाल काँच स्थापित किया गया था। इसे सुविधानुसार इस प्रकार मोड़ दिया जाता था कि इस पर पड़ने वाली सूर्य–किरणें संघनित होकर दूर से आने वाले शत्रु के जहाज पर प्रक्षिप्त हो सकें। इन प्रबल किरणों से जहाज में आग लग जाती थी तथा वह दूर ही जलकर नष्ट हो जाता था!!

इतने विशाल काँच के निर्माण के पश्चात् भी दीपक के छोटे से शीशे के लिये मानव जाति को अगले हजारों वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। तब तक सामान्य लोगों में यह विश्वास था कि यह हवा दीपक बुझाने का काम करती है। अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस के 'आर्गेण्ड' (Argand) आदि वैज्ञानिकों[3] के द्वारा शीशे के प्रयोग के पश्चात् यह जाना जा सका कि जो हवा आग बुझाने के लिये प्रसिद्ध थी वह तो आग का जीवन है! हवा से तो दीपक कभी–२ बुझता है। पर इसके बिना तो एक क्षण भी नहीं जल सकता! दीपक में शीशे की उपयोगिता यह है कि यह उसमें वायु के नियमित प्रवाह को बढ़ा देता है। शीशे के मध्य में वर्तमान वायु–स्तम्भ गर्म होकर हल्का हो जाता है। तब वह उतने ही बड़े निर्मित होने वाले घने ठण्डे वायु–स्तम्भ के द्वारा तुरन्त ही विस्थापित कर दिया जाता है। इस प्रकार उसमें ताजी हवा की नियमित आपूर्ति बढ़ जाने से दीपक बढ़िया चमकने लगता है।

इस शीशे के अभाव में हम लोग सामान्यतया यह सोचते हैं कि हवा से

---

१. सूर्यकान्त– मणि में अतिरिक्त शक्ति होने या न होने के सम्बन्ध में मीमांसा तथा न्याय में विस्तृत शास्त्रार्थ उनके ग्रन्थों में द्रष्टव्य है।

२. नैर्ऋतघ्नमथ मन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवदानतोषितात्।
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात् सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः।। —रघुवंश ११.२१

3. The lamps, however, in which the new oil was burnt remained quite primitive in construction, until Argand of France discovered a way of supplying air both inside and outside by means of hollow burner into which a tube shaped wick was fitted.
—Hermsworth popular science, London, Page. 2881.

दीपक बुझ गया। पर यह सही नहीं है। दीपक हवा से नहीं,अपितु स्वयं इसके ही दहन उत्पादों–जल वाष्प तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड से बुझता है। ये उत्पाद अग्नि के लिये विष हैं। ये गर्म होने से हल्के होकर ऊपर उड़ते रहते हैं। पर तेज तथा अनियमित हवा के झोंके के प्रभाव से ये वापस लौट कर दीपक की लौ पर छा जाते हैं। तब ताजी हवा के अभाव में दीपक बुझ जाता है। घने जंगलों में लगी आग में ये उत्पाद उसे पूरी तरह नहीं ढक पाते। तब ताजी हवा इसे निरन्तर बढ़ाने में ही सहायता करती है। (वायुना धूयमानो हि वनं दहति पावकः–महाभारत)

किसी भी पदार्थ का ज्वलन वास्तव में वायु के एक घटक ऑक्सीजन का कमाल है। यह अत्यधिक ज्वलनशील गैस है। यदि वायु–मण्डल में केवल ऑक्सीजन होती तो विश्व के सभी पदार्थ जल जाते। इसके प्रभाव को कम करने के लिये हवा में लगभग ७६ प्रतिशत नाइट्रोजन गैस उपस्थित होती है। यह न तो साँस लेनें में सहायक है, न ही ज्वलनशील है। वातावरण में वर्तमान केवल २१ प्रतिशत ऑक्सीजन ही श्वसन तथा प्रत्येक प्रकार के ज्वलन में सहायक बनती है। दीपक में शीशा तथा भँट्ठियों में चिमनी के द्वारा हम इसकी आपूर्ति में वृद्धि करके ही ज्वलन में वृद्धि कर पाते हैं।

दर्शनशास्त्र में 'वायु अग्नि का जीवन है' यह तथ्य सिद्धान्त रूप से जान लिया गया था। तभी उपनिषद् तथा वेदान्त में वांयु से अग्नि की उत्पत्ति को स्वीकार किया है[1]। अन्यत्र श्वसन से सम्बद्ध प्रसंगों में प्राणवायु को अग्नि या ऊष्मा ऊर्जा का कारण निरूपित किया है[2]। महाकवि कालिदास ने भी एक सुन्दर उक्ति में कहा है कि वायु अग्नि का प्रणोदंक बने, इसके लिये उसे किसने आदेश दिया है[3]! अर्थात् इसका ज्वलन–सहकारी बनना तो इसका नैसर्गिक स्वभाव है।

ज्वलन की प्रक्रिया में उसका रूप तथा स्पर्श (दर्शन)– वायु के सहयोग से प्रदीप आदि के ज्वलन के समय इसका उद्भूत रूप तथा इसके साथ अनिवार्यतः इसका उद्भूत स्पर्श भी उपस्थित होता है। इसीलिये हम त्वचा से इसकी ऊष्मा का तथा साथ ही चक्षु से इसके चमकदार रंग का स्पष्ट अनुभव करते हैं। अन्य शास्त्रों तथा लोक में भी ज्वलन में इन दोनों गुणों का अनिवार्य सहभाव मानते हुए कभी पहले, कभी दूसरे तथा कभी दोनों के लिये 'ज्वलन' शब्द

१. तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः।

–तैत्तिरीय उपनिषद् २.१

२ एष ह वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः। –जाबालोपनिषद्।

समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य। –कुमारसम्भवम्।

का प्रयोग होता रहा है। महाभाष्य के एक उदाहरण में कहा है कि 'जिस प्रकार बढ़िया जलता हुआ दीपक घर को जलाता है'[1]। स्पष्टतः यहाँ 'ज्वलयति' का अर्थ 'प्रकाशित करना' है। लोक में भी उष्ण अर्थ वाले 'उज्ज्वल' शब्द से हिन्दी में निर्मित 'उजाला' शब्द चमकदार रूप अर्थ को प्रकट करता है।

ज्वलन के अभाव में तेजस् का कभी अनुद्भूत रूप तथा कभी अनुद्भूत स्पर्श भी होता है। चक्षु इन्द्रिय, प्रदीप प्रभा मण्डल आदि इसके उदाहरण हैं। इस दशा में ज्वलन नहीं होता।

इस विवेचन से प्रकट है कि जहाँ ज्वलन है, वहाँ उद्भूत रूप–स्पर्श का अनिवार्य सहभाव है। साथ ही यह भी सच है कि जहाँ उद्भूत–रूप, स्पर्श है वहाँ ज्वलन अवश्य है। केवल ज्वलन न होने की दशा में ही तेजस् का अनुद्भूत रूप स्पर्श रहता है।

ज्वलन की प्रक्रिया में उसका रूप तथा स्पर्श (विज्ञान)– सामान्य दैनिक जीवन में हम उद्भूत–रूप, स्पर्श के द्वारा 'ज्वलन' को जान पाते हैं। अतः इसे ही ज्वलन की पहचान मानते हुए इस विशेषता से ज्वलन को परिसीमित करते हैं। पर ज्वलन की प्रक्रिया को देखते हुए इसका अर्थ कहीं अधिक व्यापक है तथा यह ऑक्सीकरण (Oxidation) के समतुल्य है। किसी ज्वाला में ठीक उसी प्रकार ऑक्सीकरण होता है, जिस प्रकार श्वसन में या लोहे के जंग लगने इत्यादि में। अतः प्रक्रिया की समानता से अनुद्भूत स्पर्श होने पर भी इसे भी ज्वलन ही कहा जावेगा। इस प्रकार विज्ञान के अनुसार जहाँ ज्वलन है, वहाँ ऑक्सीकरण है, उद्भूत–स्पर्श हो या न हो। मोर्चा लगना आदि मन्दतर या मन्दतम ज्वलन है। यहाँ ज्वलन की डिग्री में अन्तर है, 'ज्वलन' के स्वरूप में नहीं। इसकी ऑक्सीकरण के साथ समतुल्यता स्पष्ट करने के लिये इस की वैज्ञानिक प्रक्रिया का संक्षेप से निरूपण करते हैं–

लकड़ी आदि की अग्नि की ज्वाला में ज्वलनशील पदार्थ के अणुओं के रासायनिक बन्धन अनियन्त्रित प्रक्रम से टूटते हैं। इनके टूटने से उन अणुओं के अन्दर छिपी ऊर्जा मुक्त होती है, जो कि हमें उद्भूत रूप स्पर्श या स्पष्ट प्रकाश तथा ऊष्मा के रूप में उपलब्ध होती है। इस प्रक्रिया में उस पदार्थ के कार्बन का एक परमाणु ऑक्सीजन के दो परमाणु के साथ मिलकर तीव्र गति से नए अणुओं

१. यथा प्रदीपः सुप्रज्वलित एकदेशस्थः सर्वं वेश्माभिज्वलयति।

—समर्थः पदविधिः–अ०सू०२.१.१. पर महाभाष्य

का निर्माण करते हैं, जिन्हें कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon dioxide) कहा जाता है। यह वायु में मिल जाता है तथा शेष पदार्थ 'भस्म' के रूप में उपलब्ध होता है।

श्वसन में भी ठीक यही प्रक्रिया धीमी गति से चरितार्थ की जाती है। इस समय शरीर की विभिन्न कोशिकाओं में शर्करा या ग्लूकोज (glucose) के अणुओं का प्राण वायु में वर्तमान ऑक्सीजन की सहायता से विखण्डन होता है। इससे इन अणुओं में छिपी ऊर्जा हमें प्राप्त होती है तथा CO_2 तथा जल के रूप में अपशिष्ट पदार्थ निर्मित होते हैं, जिन्हें हम उच्छ्वास आदि उपायों से बाहर कर देते हैं। कोशिकाओं के एंजाइमों (Enzyme) के सहयोग से विहित इस प्रक्रिया में भी ग्लूकोज से ठीक उतनी ही ऊर्जा हमें धीमी गति से प्राप्त होती है जितनी इसके जलाने से हमें अति तीव्र गति से प्राप्त होती। महान् वैज्ञानिक अर्नेस्ट बोरेक के शब्दों में– 'हमारा सौभाग्य है कि एंजाइम यह काम इस तरह करते हैं, वर्ना डट कर भोजन करने के पश्चात् हम धुँआ बनकर उड़ जाते!! (परमाणु और जीवन पृ. १५)

बाहरी दुनियाँ में किसी पेंट (paint) के सूख कर पपड़ी छोड़ने में या लोहे में मोर्चा लगने आदि में ठीक यही प्रक्रिया और भी धीमी गति से सम्पन्न होती है। इसमें ऑक्सीजन के सहयोग से निर्मित अपशिष्ट पदार्थ के रूप में पपड़ी प्राप्त होती है। यहाँ भी उसी प्रकार अणुओं के टूटने से ऊष्मा ऊर्जा मुक्त होती है। यह ऊर्जा इतनी कम होती है कि यह तत्काल वातावरण में विकीर्ण हो जाती है तथा संघनित होकर हमें प्रभावित नहीं कर पाती। अतः हम इसकी ऊष्मा का अनुभव नहीं कर सकते। यह भी उसी प्रक्रिया द्वारा सम्पादित होने से ज्वलन का ही एक प्रकार है, जिसे हम मन्दतम ज्वलन के अन्तर्गत रख सकते हैं[1]।

प्रस्तुत विवेचन से प्रकट है कि ज्वलन की प्रक्रिया में उद्भूत रूप स्पर्श का नहीं, अपितु ऑक्सीकरण का होना अनिवार्य है। इससे प्रत्येक ज्वलन में ऑक्सीजन का सहयोग सिद्ध होता है।

इसके साथ ही अब यह भी सिद्ध हो चुका है कि उद्भूत रूप स्पर्श के लिये प्रस्तुत प्रकार का ज्वलन अनिवार्य नहीं है। आधुनिक युग में विद्युत् ऊर्जा के अनेकानेक प्रयोगों के प्रचलित होने पर बढ़िया चमकदार प्रकाश के लिये ज्वलन पर निर्भरता समाप्त हो चुकी है। आज विद्युत् बल्बों के द्वारा पूर्वोक्त से भिन्न प्रकार से प्रकाश प्राप्त किया जाता है। बल्ब के नन्हें पतले तार में मुक्त एलेक्ट्रोनों के अणुओं के साथ घर्षण से ऊष्मा तथा प्रकाश ऊर्जा विनिर्मुक्त होती है। इसके लिये

1. Rusting is very slow kind of burning, so slow that you can't even feel the heat being given off.
—Tell me why, Page 340

बल्ब में से ऑक्सीजन को सर्वथा निकाल कर उसमें कुछ निष्क्रिय गैसें भर दी जाती हैं। यदि इसमें ऑक्सीजन बनी रहने दी जावे तो इस भयंकर घर्षण के समय बल्ब का यह नन्हाँ तार तुरत जल कर भस्म हो जावेगा, उसके चमकने का तो प्रश्न ही क्या ! इससे सर्वथा स्पष्ट है कि बल्ब के अन्दर ऑक्सीकरण रूपी जलना नहीं होता। फिर भी चमकना तो होता ही है। अतः सिद्ध है कि चमकने के लिये वस्तु में पूर्वोक्त पारिभाषिक 'ज्वलन' आवश्यक नहीं है।

आज कल हम लोग 'दीपक जलना' जैसे प्रयोगों से अभ्यस्त होकर 'बल्ब जलना' ऐसा कहते हैं। पूर्वोक्त प्रक्रिया के अनुसार यह सही प्रयोग नहीं है। आज दीपक के बढ़िया ज्वलन तथा बल्ब की खूबसूरत चमक के युग में तो सच यह है कि दीपक जल गया तथा बल्ब चमक गया!!

---

६. हवा कैसे भागती है!

(वायु का गति–विज्ञान)

हमारे दैनिक जीवन में हवा का चलना अत्यन्त स्वाभाविक या सामान्य प्रक्रिया है। पर कभी इसके आँधी का रूप ले लेने पर हम यह सोचने को विवश होते हैं कि यह किन कारणों से इतना तेज भागती है। अतिप्राचीन काल से ही लोगों को इसके अतितीव्र भागने का अनुभव रहा है। अतः अनेक वैदिक वचनों में इसे अति शीघ्रगामी देवता बताया है[१] तथा लोक में वायु–वेग, पवन–वेग, वात–रंहस् जैसे शब्दों के प्रयोग से इसके वेग को प्रकट किया जाता रहा है।

प्राचीन काल से ही इस वेग के कारणों को भी खोजा जाता रहा है। तैत्तिरीय उपनिषद् का कहना है कि उस महान् शक्तिशाली के डर से ही सूर्य का उदय होता है तथा उसके डर से ही हवा चलती है[२]।

इसे हम किसी सीमा तक काव्यात्मक वचन मान सकते हैं। दर्शन शास्त्र में इस पर अधिक गम्भीरता से विवरण उपलब्ध होता है। भारत में भौतिक विज्ञान के जनक महर्षि कणाद का कहना है कि अणु तथा मनस् की आद्य गति तथा वायु की तिर्यग्गति 'अदृष्ट' द्वारा होती है[३]। उनका मानना है कि अणु आदि में बाद वाली गति तो 'वेग' नामक गुण के कारण सम्पन्न होती है। पर इनकी सबसे पहले वाली गति तथा वायु की तिर्यग्गति ऐसे अदृष्ट कारण से होती है, जिसे हम नहीं देख या जान सकते[४]। इस प्रकार कणाद का मानना है कि इनकी गति निष्कारण तो नहीं है। पर इसके कारण ढूँढ़ने में कठिनाई है।

दर्शनशास्त्र में गतिविषयक सिद्धान्त– वायु की गति–विषयक कठिनाइयों या समस्याओं को समझने के लिये दर्शनशास्त्र के गति के कुछ सिद्धान्तों का निरूपण आवश्यक है। ये सिद्धान्त क्रमबद्ध रूप से नहीं कहे गए हैं। पर अनेक

---

१. वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता। —तैत्तिरीय संहिता २.१.१.१.

२. भीषाऽस्मात् पवते वायुः, भीषोदेति सूर्यः। —तैत्तिरीय उपनिषद् २.८.१

३. अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवनम् अणूनां मनसश्चाद्यं कर्मादृष्टकारितम्।
— वैशेषिक सूत्र ५.२.१३

४. वैशेषिक. में न + दृष्ट' इस. विग्रह के अनुसार 'नहीं देखा गया' यह 'अदृष्ट' शब्द का मौलिक अर्थ हो सकता है। यद्यपि पारिभाषिक रूप से इसका 'धर्म – अधर्म' अर्थ स्वीकार किया जाता है।

प्रसंगों में प्राप्त अलग–२ विवेचनों के आधार पर इन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

१. किसी भी पिण्ड में गति सकारण होती है, पर स्थिरता स्वाभाविक होती है। पिण्ड में उत्पन्न कोई भी गति चौथे क्षण उस पिण्ड में उत्तर–देश–संयोग' उत्पन्न करके पाँचवें क्षण उस 'संयोग' द्वारा अनिवार्यतः नष्ट हो जाती है। गति का यह फल तथा इस फल से गति का विनाश अवश्यंभावी है। यह किसी भी गति या क्रिया की सामान्य विशेषता है[1]। कभी–२ यह गति वेग को उत्पन्न करती है तथा यह वेग बार–२ नई–नई क्रियाएँ उत्पन्न करता है। यह गतिशील पिण्ड के अन्य–२ देश–संयोग से ज्ञात होता है[2]। पर यह वेग भी अन्त में किसी विशेष क्षण से अवच्छिन्न काल के द्वारा नष्ट हो जाता है, तब क्रिया भी विनष्ट हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक गतिशील पिण्ड की स्थिरता की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति है तथा इसके स्थिर बने रहने के लिये किसी अतिरिक्त कारण की आवश्यकता नहीं है।

२. किसी भी पिण्ड को गतिशील बनाने के लिये बाहरी बल लगाना पड़ता है। दर्शनशास्त्र में 'बल' नामक कोई अतिरिक्त पदार्थ नहीं है। अतः हम यहाँ इसके समकक्ष आत्मनिष्ठ प्रयत्न या 'तेजस्' का प्रयोग कर सकते हैं। किसी पिण्ड में कोई क्रिया हाथ की क्रिया से तथा यह क्रिया 'प्रयत्न' गुण वाले आत्मा के तेजोविशिष्ट हाथ के साथ संयोग से उत्पन्न होती है। किसी गेंद को दूर फेंकने में तेजस् द्रव्य, प्रयत्न नामक गुण[3] तथा किसी पेड़ से फल के नीचे गिरने में उस फल का वृक्ष से संयोगाभाव तथा फल में वर्तमान 'गुरुत्व' गुण कारण होता है[4]। इस प्रकार किसी भी क्रिया के लिये किसी बाहरी कारण का प्रयोग अत्यावश्यक होता है। पिण्ड को क्रियाशील देख कर हम इन कारणों का अनुमान कर सकते हैं। पर इसकी स्थिरता की दशा में हम किसी बाहरी बल के कार्यशील होने की

---

१. स्वकार्य– संयोगविरोधित्वम् – प्रशस्तपादभाष्य, कर्मनिरूपण पृ. ६६७। अर्थात् अपने द्वारा उत्पन्न संयोग से विनष्ट होना किसी भी क्रिया की विशेषता है।

२. इषावयुगंपत् संयोगविशेषाः कर्मान्यत्वे हेतुः (वैशेषिक सूत्र ५.१.१६) कर्मोत्पत्तिरथ विभागः, अथ पूर्वसंयोगनाशः, उत्तरसंयोगः, कर्मनाशः। तेनायुगपत् संयोगविशेषा कर्मनानात्वज्ञापकाः।
——उक्त सूत्र पर उपस्कार।

३. तथा हस्तसंयोगाच्च मुसले कर्म (वैशेषिक सूत्र ५.१.२) अत्र च प्रयत्नवदात्मसंयुक्तेन हस्तेन मुसलस्य संयोगोऽसमवायिकारणम्, मुसलं समवायिकारणम्।——उक्त सूत्र पर उपस्कार।

४. संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् (वै०सू० ५.१.७)

कल्पना नहीं कर सकते[1]। अतः स्पष्ट है कि पिण्ड की स्थिर दशा में उस पर प्रत्येक बल शून्य होता है तथा यह बाहरी अतिरिक्त बल से गतिशील होता है।

३. किसी भी ऊपर फेंके गए पिण्ड के ऊपर जाते–२ वायु आदि के प्रतिबन्ध से उसका वेग नामक संस्कार तथा क्रिया अन्ततः नष्ट हो जाती है। तब वह ऊपर स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। पर इस स्थिरता के समकाल ही पिण्ड में वर्तमान गुरुत्व के द्वारा अगले क्षण इसमें विपरीत दिशा की ओर क्रिया उत्पन्न हो जाती है तथा इसके पश्चात् वेग से पुनः क्रिया उत्पन्न होकर वह नीचे आ जाता है[2]।

ये ऊपर उठना, नीचे गिरना (उत्क्षेपण, अवक्षेपण) जैसी क्रियाएँ सीधी दिशा में प्रवृत्त होती हैं। वेग बने रहने तक हाथ से फेंके गए बाण आदि इसके उदाहरण हैं। इनसे स्पष्ट है कि यदि कोई अतिरिक्त बल न लगाया जावे तो ये क्रियाएँ सीधी दिशा का ही अनुसरण करती हैं। बहते पानी आदि में रास्ता रोक कर अर्थात् अतिरिक्त बल लगाकर इनकी दिशा बदली जा सकती है।

प्रस्तुत सिद्धान्तों से वायु के गति–निरूपण में समस्याएँ– दर्शन में इन समस्याओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं है। हम केवल संकेत से यह जान सकते हैं कि दार्शनिकों को इनका अनुभव अवश्य होता रहा है। कुछ समस्याएँ इस प्रकार हैं–

१. किसी द्रव्य में स्थिरता की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होते रहने पर भी आकाश में विशाल ग्रह, नक्षत्रादि किस प्रकार सदा चलते रहते हैं। खगोल शास्त्र के ग्रन्थों में इनके चलाने के लिये एक विशेष 'प्रवह' वायु की परिकल्पना की गई है[3]। पर इस पर भी प्रश्न है कि यह वायु क्यों सदा चलती रहती है, रुक क्यों नहीं जाती।

१. महर्षि कणाद के समय (लगभग ईसा पूर्व चौथी शताब्दी) में पिण्ड की स्वाभाविक स्थिरता तथा उसे गतिशील बनाए रखने के लिये बाहरी बल की आवश्यकता आदि विचार विश्व में प्रचलित थे। उस समय महान् दार्शनिक अरस्तू (384-322 B.C.) ऐसे ही विचार रखते थे। रोचक तुलना के लिये द्रष्टव्य है उनके विचार–

In the opinion of the philosopher, Aristotle, the natural state of a body is rest, of course, with respect to the earth. Every displacement of a body with respect to the earth must have a cause- a force. But if there is nothing causing a body to keep moving, it must hall, return to its natural state.

——Physics for every one, L.D. Landau, Book 1, Page 42.

२. संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम्। –वै०सू० ५.२.१८

३. भारत के महान् ज्योतिषी आर्यभट ने ४९९ ई. में अपने आर्यभटीय नामक ग्रन्थ में सबसे पहले यह बताया कि वास्तव में तारामण्डल स्थिर है तथा यह पृथिवी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है। तो भी जिस प्रकार नाव में बैठा मनुष्य तट की अचल वस्तुओं को उल्टी दिशा में जाता हुआ अनुभव करता है, उसी प्रकार पृथिवी पर बैठा मनुष्य तारामण्डल को 'प्रवह'

२. अन्य पिण्डों के समान स्थिर वायु को भी गतिशील बनाने के लिये बाहरी बल का प्रयोग आवश्यक है। पर आँधी आदि के चलते समय किसी बाहरी बल को प्रयुक्त होते हुए नहीं देखा जाता। अतः प्रश्न है कि यह किन कारणों से बार–२ गतिशील हो उठती है।

३. यदि परस्पर प्रतिघात से कोई वायु ऊपर चली गई[1] तो वह गतिशील होकर नीचे किस प्रकार आ सकती है। क्योंकि किसी भी क्रिया की उत्पत्ति के लिये ४ गुण ही कारण होते हैं[2]। जल में क्रिया के लिये द्रवत्व तथा चेतन में क्रिया के लिये प्रयत्न कारण होते हैं। इनसे भिन्न वायु को ऊपर से नीचे की ओर गतिशील बनाने के दो ही साधन हैं– या तो ऊपर से किसी अन्य बलशाली क्रियाशील पदार्थ का इसके साथ संयोग हो अर्थात् ऐसे पदार्थ की वायु के साथ टक्कर हो अथवा गुरुत्व के द्वारा इसमें नवीन क्रिया उत्पन्न हो। पर वायु में कोई भी अधः प्रेरक पिण्ड के साथ संयोग दृश्य नहीं है तथा दर्शन के अनुसार वायु में गुरुत्व भी स्वीकृत नहीं है। अतः प्रश्न है कि इनका अवक्षेपण किस प्रकार सम्भव होता है।

वायु द्वारा पूर्व से पश्चिम की ओर भगाया जाता हुआ अनुभव करता है। श्लोक इस प्रकार है–

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम्।
उदयास्तमयनिमित्तं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः।
लंकासमपश्चिमगो भपंजरः सग्रहो भ्रमति। —आर्यभटीय गोलपाद श्लोक ६–१०

इससे प्रकट है कि अन्य ज्योतिषी पृथ्वी को स्थिर तथा 'प्रवह' वायु से तारामण्डल को चलता हुआ मानते थे। पर आर्यभट इसका प्रतिषेध करते थे। फिर भी भारत में अगले सैकड़ों वर्षों तक अनेक समस्याओं के कारण प्रवह वायु की अमान्यता का सिद्धान्त तथा भूभ्रमण सिद्धान्त स्थापित नहीं हो पाया। एक समस्या का विवरण ऊपर दिया गया है। इसीलिये वराहमिहिर (५००–५५०), भास्कराचार्य (जन्म १११४ ई.) आदि अनेक ज्योतिषियों ने नक्षत्रों को चलाने के लिये प्रवह वायु की स्थापना की तथा भूभ्रमण का विरोध किया। आर्यभट के लगभग १ हजार वर्ष पश्चात् कोपर्निकस (१४७३–१५४३ ई.) ने भूभ्रमण को पूरी स्पष्टता के साथ सुस्थापित किया।

१. वैशेषिक सूत्र २.१.१४ में दो विरोधी दिशाओं से आने वाली वायु की टक्कर से उसके ऊर्ध्वगमन का वर्णन है।

२. गुरुत्व– द्रवत्व– प्रयत्न– संयोगजत्वं कर्मत्वम्– प्रशस्तपादभाष्य, कर्मनिरूपण पृ. ६६७। इसके अनुसार गुरुत्व, द्रवत्व, प्रयत्न तथा क्रियाशील पिण्ड के संयोग– इन चार गुणों से ही किसी अन्य पिण्ड में कोई क्रिया उत्पन्न होती है।

अन्य उदाहरण में मान लीजिये वायु अपने वेग नामक संस्कार से गति कर रही है। इस परिस्थिति में उसे अपनी दिशा नहीं बदलनी चाहिये। जैसा कि ऊपर कहा गया– पृथिवी, जल में कोई क्रियाजनक वेग सीधी दिशा में ही क्रिया उत्पन्न करने का कारण देखा गया है। यदि एक ही वेग विपरीत दिशा में भी क्रिया का कारण हो तब तो ऊपर फेंकी गई गेंद उसी पहले वेग से नीचे भी आ सकेगी। तब ऊपर से नीचे लाने के लिये गुरुत्व गुण तथा उसके द्वारा नवीन क्रिया तथा नवीन वेग की उत्पत्ति मानने की आवश्यकता क्यों होती है। इससे सिद्ध है कि एक ही वेग विपरीत दिशा में क्रिया का हेतु नहीं हो सकता। ऐसी दशा में प्रश्न बंना ही रहता है कि वायु की तिर्यग्गति किस प्रकार सम्भव होती है।

स्पष्टतः इन्हीं समस्याओं के कारण वैशेषिक तथा इसके पश्चात् भी वायु की तिर्यग्गति का 'अदृष्ट' कारण माना है। प्रशस्तपादभाष्य का कहना है कि जो कार्य जीवों के उपकार तथा अपकार को प्रभावित करे पर उसका कारण प्रत्यक्ष या अनुमान से देखा न जा सके, उसे अदृष्ट से उत्पन्न माना जाता है[1]। वायु की तिर्यग्गति आदि इसी प्रकार के हैं।

आधुनिक विज्ञान के द्वारा प्रस्तुत समस्याओं का समाधान– १. महान् वैज्ञानिक न्यूटन ने अपने जड़त्व–नियम द्वारा यह सिद्ध किया है कि कोई भी पिण्ड यदि वह स्थिर अवस्था में है तो उसी अवस्था में रहेगा तथा यदि वह चल रहा है तो उसी दिशा में उसी वेग से चलता रहेगा, यदि उसमें कोई बाहरी बल न लगाया जाय[2]। इस सिद्धान्त से प्रकट है कि स्थिर पिण्ड में स्थिरता के साथ–२ गतिशील पिण्ड में गतिशीलता भी उस वस्तु का स्वाभाविक गुण है। किसी कारण से कुछ समय के लिये आरोपित नहीं– जैसा कि प्राचीन विद्वान् सोचते थे। वस्तुतः विश्व के किसी भी गतिशील पिण्ड में जड़त्व के अनुसार समान वेग से चलते रहने की अद्भुत क्षमता है[3]। इस प्रकार किसी गतिशील पिण्ड की क्रिया उस पिण्ड का स्वरूप है। उसे बनाए रखने के लिये किसी बाहरी कारण खोजने की आवश्यकता नहीं[4]।

---

१. यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यामनुपलभ्यमानकारणमुपकारापकारसमर्थं च भवति तदप्यदृष्टकारितम्।
—प्रशस्तपादभाष्य, कर्मनिरूपण पृ. ७४०

2. An object in motion tends to remain in motion in a straight line unless acted upon some outside force. ----- Newton's first law of motion.

3. Inertia is an inalienable property of each particle in the universe.
-----------Physics for every one, Page 45.

4. You cannot separate matter and motion. Motion, said Engels, is the mode of existence of matter. —Dialectical materialism, Page 36.

वस्तुतः इसीलिये आकाश में किसी प्रतिबन्धक के अभाव में गतिशील ग्रह, नक्षत्रादि किसी 'प्रवह' की सहायता के बिना ही निरन्तर गतिशील रहते हैं।

२. पर सामान्य दैनिक जीवन में हम सदा यह देखते हैं कि किसी पिण्ड को गतिशील बनाने के लिये निरन्तर अतिरिक्त बल का प्रयोग करना पड़ता है। यह अतिरिक्त बल वस्तुतः उसे निरन्तर गतिशील बनाए रखने के लिये नहीं, अपितु प्रतिबन्धक बल के निवारण के लिये लगाना पड़ता है।

किसी पिण्ड की स्थिर दशा में भी उस पर अनेक बल कार्यशील होते हैं। फिर भी उनसे कार्य उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि उनका परिणामी बल शून्य होता है। किसी मैदान पर पड़ी हुई गेंद में प्रयुक्त पृथिवी का गुरुत्वाकर्षण बल गेंद को ऊपर उठंने से रोकता है। पृथ्वी के अणुओं का आपसी अन्तराणविक बल गेंद का प्रतिकर्षण करते हुए उसे नीचे नहीं धँसने देता। अगर कोई भारी गेंद किसी लचीली वस्तु में धँसती है तो मानना होगा कि गुरुत्व बल ने उस सीमा तक प्रतिकर्षण बल पर विजय प्राप्त की है[1]। परन्तु सभी उदाहरणों में जहाँ गेंद स्थिरता प्राप्त करती है वहाँ इन बलों का सन्तुलन (equilibrium) रहता है। यहाँ प्राचीन विद्वानों का कहना है कि किसी क्रिया न होने से बल का प्रयोग शून्य है। पर न्यूटन का गति–विज्ञान बताता है कि यहाँ वास्तव में परिणामी बल (resultant force) का प्रयोग शून्य है[2]। इस प्रकांर यह सर्वथा सम्भव है कि बल रहते हुए भी कोई कार्य न हो।

इस दशा में किसी स्थिर पिण्ड को गतिशील बनाने के लिये यह आवश्यक है कि इसके परिणामी बल को बढ़ा दिया जाय अथवा बलों के सन्तुलन को भंग कर दिया जाय। यह कार्य अनेक प्रकार से हो सकता है। या तो पिण्ड में धक्का देकर घर्षण बल के विरोध में उससे अधिक यान्त्रिक बल प्रयुक्त कर दिया जाय। तब वह गेंद आगे भागने लगेगी। अथवा गड्ढा खोदकर पृथ्वी की ऊपरी सतह के अणुओं द्वारा गेंद पर लगने वाले प्रतिकर्षण बल को हटा दिया जाय। तब नीचे की सतह का गुरुत्वीय बल स्वतः कार्यशील हो उठेगा तथा उससे गेंद नीचे गिरने लगेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी विरोधी बल को बढ़ा कर अथवा अन्य विरोधी बल को घटा कर भी गेंद को गतिशील बनाया जा सकता है।

1. When compressing bodies, we overcome the forces of repulsion of molecules. —Physics, Page 74.

2. If two equal forces opposite in directions are acting on a body, then the resultant of the forces is equal to zero. —Physics, Page 68.

वायु की गतिशीलता के लिये किसी बाहरी बल से वायु को धक्का देने वाला पहला उपाय नहीं, अपितु दूसरा उपाय काम में लाया जाता है। इस उपाय से किसी स्थान–विशेष की वायु के घनत्व या दबाव कम करते हुए इनके पारस्परिक दबाव के सन्तुलन को अथवा किसी क्षेत्रविशेष (area) में आपसी गैसीय बलों के सन्तुलन को भंग कर दिया जाता है। यह कार्य सूर्य के द्वारा सम्पन्न होता है। सूर्य अपनी भयंकर ऊष्मा से वायु को गर्म क़रके इसके घनत्व को कम बनाता है। इससे वायु हल्की होकर ऊपर उठती है। तब इस स्थान में वायु के लिये जगह खाली होने पर इस सतह का गुरुत्त्वीय बल तुरन्त अन्य स्थान की घंनी वायु को अपनी ओर खींचता है। इससे वह घनी वायु गतिशील होकर शीघ्रता से वहाँ पहुँचती है। वायुदाब जितना कम होता है, उतनी ही तीव्र गति से वायु अन्य स्थान से आकर उस स्थान को भरती है। इस प्रक्रिया को हम दैनिक जीवन में आँधी, तूफान कह कर पुकारते हैं।

चक्रवात आदि में २००–३०० किलोमीटर प्रति घण्टा चलने वाली महाभयंकर आँधी इस सूर्य की ऊष्मा का ही परिणाम है। अतः इस परिच्छेद के प्रारम्भ में उल्लिखित उपनिषद् के अनुसार यदि यह कहें कि ऐसी भयंकर हवा किसी के डर से चलती है तो विज्ञान के अनुसार यह मानना होगा कि यह डर सूर्य का ही है!!

३. प्रस्तुत विवेचन से वायु की तिर्यग्गति की भी व्याख्या की जा सकती है। इस विस्तृत वातावरण में वर्तमान वायु में ऊष्मा का असमान वितरण होता है। अतः कोई भी छोटा से छोटा वायुखण्ड भी अन्य वायुखण्ड की ऊष्मा तथा उस से जनित विरलता से प्रभावित होकर गुरुत्व बल द्वारा उस ओर मुड़ सकता है। जल आदि की अपेक्षा वायु में घनत्व बहुत कम होने से इसमें किंचित् गुरुत्व बल भी प्रभावित कर देता है। वेग द्वारा सीधी दिशा में गति सम्पन्न होती है। पर प्रतिबन्ध होने पर उसका मुड़ना प्राचीन विद्वानों को भी मान्य है ही। यहाँ असमान वितरित ऊष्मा के द्वारा विविध वायुखण्डों पर लगने वाले असमान बलों का प्रभाव ही सीधी दिशा में चलने के लिये प्रतिबन्ध है। इस दशा में वायु का हर समय दिशा बदलना अत्यन्त स्वाभाविक है[1]।

---

१. सांख्य दर्शन में प्रकृति के विविध गुणों की विषमता से क्रिया तथा नवीन पदार्थों का आविर्भाव माना गया है। द्रष्टव्य–'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान्......
–सांख्य सूत्र तथा सांख्यकारिका श्लोक १६ इत्यादि।
प्रस्तुत प्रसंग के द्वारा परिणामी बलों के असन्तुलन से वायु की तिर्यग्गति की सुन्दर व्याख्या की जा सकती है।

७. चिड़िया कैसे उड़ती है तथा चाँद कैसे टिकता है

(वायु का विधारकत्व तथा निर्वात में ग्रहों का प्रतिष्ठितत्व)

अति प्राचीन काल से पक्षी का उड़ना लोगों में कुतूहल का विषय रहा है। इनके समान पंख लगा कर उड़ने की इच्छा भी बलवती रही है। 'विमान' जैसे शब्द इसी भावना को प्रकट करते हैं। इसका मौलिक अर्थ 'पक्षी के समान आकार धारण करना' यह है। साथ ही ग्रहों के आकाश में टिकने को सनातन आश्चर्य का विषय माना जाता रहा है। महाभाष्य में एक उद्धरण का अर्थ यह है कि 'गजब है कि कहीं से भी न बंधे हुए ये नक्षत्र गिरते नहीं'!![१] अथर्ववेद में सूर्य, चन्द्र तथा वायु आदि की अवस्थिति या आधार के लिये किसी 'खम्भे' के विषय में पूछा गया है[२]। बाइबिल आदि धर्मग्रन्थों में भी ईश्वर के विशाल खम्भों की परिकल्पना की गई है[३]।

दर्शनशास्त्र में इन घटनाओं के कारणों पर निरन्तर विचार किया जाता रहा है। इसके अनुसार विविध वस्तुओं में इन घटनाओं के अलग–२ कारण होते हैं। इन्हें क्रमशः इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

ऊपर उड़ने या नीचे न गिरने के विविध कारण (दर्शन)

१. पत्ता, रुई, विमान आदि का उड़ना– पत्ता आदि जो जड़ पदार्थ आकाश में लगभग स्थिर जैसे उपलब्ध होते हैं, उनके धारण कर्म में वेग–पूर्ण वायु–संयोग कारण होता है[४]। इस प्रकार आकाश में वायु–संयोग ही इनका विधारक बनता है। दर्शन में नियम है कि वेग या प्रयत्न गुण से विहीन पदार्थ किसी विधारक के बिना आकाश में टिक नहीं सकते। अपितु ये स्पर्श वाले किसी द्रव्य में ही अवस्थित हो सकते हैं। आकाश में उड़ने वाले पत्ते का पृथिवी, जल, तेज विधारक नहीं होते। अतः इनसे भिन्न स्पर्श वाला वेगपूर्ण वायु द्रव्य ही इनका

---

१. आश्चर्यमन्तरिक्षेऽबन्धनानि नक्षत्राणि न पतन्ति– अष्टाध्यायी ६.३.१४७ सूत्र पर महाभाष्यकार ने इसे सदा बने रहने वाले आश्चर्य के रूप में उद्धृत किया है।

२. यत्राग्निश्चन्द्रमा सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यर्पिताः।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।। —अथर्व १०.७.१२

3. For the pillars of the earth are the lord's, and he hath set the world upon them.
—Holy Bible-Samuel 1.2.8

४. तृणे कर्म वायु–संयोगात्। – वैशेषिक सूत्र ५.१.१४

विधारक सिद्ध होता है[1]। यही विधारकत्व वायु का अनुमापक भी बनता है[2]।

दर्शन के अन्य विद्वानों का मानना है कि तिनका, रुई, आकाशीय बिजली, विमान आदि वेगपूर्ण वायु में ही टिक सकते हैं। उनका अनुमान प्रयोग यह है कि जो द्रव्य हम लोगों के प्रयत्न आदि से उठाए गए न हों, वे अवश्य ही स्पर्श वाले तथा वेग वाले द्रव्य द्वारा विधारित किये जाते हैं। तिनका आदि उठाने में हम लोगों के विधारक न बनने की स्थिति में वायु ही इनका विधारक सिद्ध होती है[3]।

२. पक्षी का उड़ना– पक्षी आदि चेतन प्राणियों के उड़ने में अथवा नीचे न गिरने में उनका विधारक प्रयत्न कारण होता है[4]। पक्षी उड़ते समय अपने पंखों को फैला लेते हैं। यह कार्य उनके आत्मनिष्ठ प्रयत्न से सम्भव होता है। अतः यहाँ इस प्रयत्न को कारण कहा गया है। इस प्रयत्न द्वारा वायु–संयोग न होने पर भी पक्षियों का उड़ना सम्भव हो सकता है[5]।

३. गतिशील बाण का नीचे न गिरना– फेंके गए बाण आदि के नीचे न गिरने देने में गति से उत्पन्न वेग नामक संस्कार प्रतिबन्धक हेतु होता है। इसीलिये वे इस वेग के क्षीण होने पर अपने गुरुत्व के द्वारा नीचे गिर पड़ते हैं[6]।

४. पृथिवी तथा अन्य ग्रहों का नीचे न गिरना– इनके नीचे न गिरने में प्रयत्न गुण वाले ईश्वर का संयोग कारण होता है[7]।

---

१. तृणे कर्म वायु– संयोगादिति वचनात् वायौ संस्कारो दर्शितः। वेग– रहित्– द्रव्य– संयोगस्य कर्महेतुत्वानुपलम्भात्। —प्रशस्तपादभाष्य, कन्दली, वायु–प्रकरण, पृ. ११२

२. पर्णादीनां धृतिरवस्थितिः स्पर्शवद्द्रव्य– संयोगकार्या, प्रयत्नवेगादिकारणाभावे सति धृति–त्वाज्जलोपरि स्थितपर्णादिवत्। —वही पृ. ११७

३. नभसि तृणतूलस्तनयित्नुविमानादीनां धृतिः स्पर्शवद्वेगवद्द्रव्य– संयोगहेतुका अस्मदाद्यनधिष्ठित द्रव्यधृतित्वात् नौकाधृतिवत्। —मुक्तावली प्रत्यक्षखण्ड वायुनिरूपण में दिनकरी पृ. १३८

४. विहंगमादौ तु विधारकः प्रयत्नः पतनप्रतिबन्धकः। —वैशेषिक सूत्र ५.१.७ पर उपस्कार।

५. टिप्पणी नं. २ में उल्लिखित अनुमान की व्याख्या में कन्दली में कहा है कि बाण तथा पक्षियों की आकाश में स्थिति में 'स्पर्शवद्द्रव्य– संयोग– कार्यत्व' अर्थात् स्पर्श वाले वायु–संयोग के निवारण के लिये उस अनुमान में 'प्रयत्नवेगादि– कारणाभावे' यह कहा है। द्रष्टव्य– 'इषोः पक्षिणाञ्च स्थिति– व्यवच्छेदार्थं प्रयत्नादिकारणाभावः'—कन्दली, वायु–प्रकरण, पृ. ११७

६. संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् —वैशेषिक सूत्र ५.१.१८ तथा काण्डादौ क्षिप्ते संस्कार एवं पतनप्रतिबन्धकः। वै०सूत्र ५.१.७ पर उपस्कार।

७. प्रयत्नवदीश्वर– संयोगात् प्रतिबन्धादेव भूरादिलोकानां न पतनम्—वै.सू.५.१.७ पर विवृति।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि दर्शन–शास्त्र के अनुसार ईश्वर–संयोग तो हर घटना का साधारण कारण होता है। पर उसके साथ ही कोई विशेष भौतिक कारण भी अवश्य होता है। दर्शन में प्रायः सर्वत्र ऐसे कारणों की खोज तथा उनका निरूपण किया जाता है। पर यहाँ ऐसे किसी विशेष कारण का उल्लेख न करते हुए ईश्वर–संयोग को ही कारण मान लिया गया है। यहाँ पूर्वोक्त गति अथवा वेग को भी ग्रहों के पतन के प्रतिबन्ध में हेतु नहीं बताया है। क्योंकि दर्शन में इसके निरूपण में भी अनेक बाधाएँ उपस्थित थीं। दर्शन में इन समस्याओं का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। अनेक प्रसंगों के अनुशीलन के आधार पर इन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

ग्रहों के अपतन के निरूपण में अनेक समस्याएँ–

I किसी भी ऊपर फेंके गए पिण्ड में क्षणिक क्रिया तथा स्थायी गुरुत्व होता है। अतः किसी पिण्ड की गति पर उसका गुरुत्व अनिवार्यतः विजय प्राप्त करते हुए उसे नीचे ले आता है। ऊपर रहने वाले ग्रह के साथ भी ऐसा ही होना चाहिये। थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि उसकी गति से उसका पतन बाधित होता है, तो भी उस गति को धीरे–२ क्षीण होना चाहिये तथा अन्त में इस ग्रह को नीचे आ जाना चाहिये। ऐसा क्यों नहीं होता?

II गुरुत्व सदा एकल होता है। ईसा की चौथी शताब्दी में महान् दार्शनिक प्रशस्तपाद ने कहा कि यह गुरुत्व गिरने वाले पिण्ड में समवाय या अनिवार्य सम्बन्ध से अवस्थित होता है तथा यही इसके धरती या जल में गिरने का कारण होता है[1]। अतः प्रश्न है कि ऊपर दिखने वाले ग्रह अपने गुरुत्व के प्रभाव से पृथ्वी पर क्यों नहीं गिर जाते।

भारत के महान् वैज्ञानिक भास्कराचार्य (१११४ ई.) ने सर्वप्रथम यह बताया था कि कोई भी पिण्ड उसके गुरुत्व से नहीं गिरता, अपितु पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से उसकी अधोदिशा की ओर खींचा जाता है। यह खींचा जाना हमें गिरने के रूप में प्रतीत होता है[2]। यह पृथिवी अपनी शक्ति से आस–पास के पिण्डों को अपनी ओर खींचते हुए अपनी जगह व्यवस्थित रहती है। इसी प्रकार ग्रह भी

---

१. गुरुत्वं जलभूम्योः पतन–कर्म–कारणम् —प्रशस्तपादभाष्य, गुरुत्वनिरूपण, पृ. ६४०

२. आकृष्ट– शक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत् पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।
—सिद्धान्तशिरोमणि में भुवनकोश नामक तृतीय अध्याय, श्लोक–६

अपने–२ स्थान पर टिके रहते हैं। क्योंकि यदि पृथिवी या ग्रह को अपने–२ स्थान से गिरता हुआ मानें तब तो इस विस्तृत आकाश में 'वह कहाँ गिरेगी, वे किस पर गिरेंगे'– इस प्रकार के प्रश्नों का कभी अन्त ही नहीं होगा। इसे ही दर्शन में 'अनवस्था दोष' कहते हैं। इससे बचने के लिये यही मानना श्रेयस्कर है कि धरती तथा ग्रह अपने आस–पास के पिण्डों को अपनी ओर खींचते हैं। पर ये स्वयं किसी के द्वारा नहीं खींचे जाते। वे वहीं व्यवस्थित रहते हैं। वस्तुओं का ऐसा ही विचित्र स्वभाव है। (मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः –भुवनकोश, श्लोक ५)

यह सिद्धान्त लोकप्रिय नहीं हुआ। अतः भास्कराचार्य के पश्चात् भी महान् वैज्ञानिक गेलिलियो (Galileo 1564-1642) से पूर्व विश्व में यह माना जाता रहा कि धरती पर किसी पतनशील पिण्ड की अधोदिशा में गति उस पिण्ड के गुरुत्व के कारण होती है[1]।

भारत में १३वीं शताब्दी में तर्क भाषा कार तथा १७वीं शताब्दी में मुक्तावलीकार ने भी गुरुत्व का यह लक्षण माना कि किसी पिण्ड के आद्य–पतन का असमवायिकारण उस पिण्ड में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला गुरुत्व गुण होता है[2]।

इस मान्यता की उपस्थिति में गुरुत्व वाले ग्रहों के पतन के समाधान के लिये यह मान लिया गया कि ईश्वर–संयोग ही इनके पतन का प्रतिबन्धक होता है।

ऊपर उड़ने या नीचे न गिरने के कारण (विज्ञान)

१. विभिन्न पदार्थों का उड़ना– किसी भी उड़ते हुए या तैरते हुए पदार्थ में नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः वायु तथा जल का उछाल बल (buoyant force) लगता है। इसे ही दर्शनशास्त्र में वायु का 'विधारकत्व' कहा गया है।

पर इतनी व्याख्या से हम यह नहीं जान पाते कि किन परिस्थितियों में वायु का 'विधारकत्व' अथवा उसका 'उछाल बल' सफल नहीं हो पाता। दर्शन की भाषा में यह पूछ सकते हैं कि उपरिवर्णित अनुमान के अनुसार जहाँ विधारकत्व है, वहाँ वायु–संयोग होता है। पर इसके साथ ही जहाँ–२ वायु–संयोग है, वहाँ

1. It was believed until that time that the speed with which a falling object struck the ground from any height depended on the weight of the object.

— Tell me why, London, Page 83

२. गुरुत्वमाद्यपतनासमवायिकारणम्। —तर्कभाषा, प्रमेयनिरूपण पृ. २०४

प्रत्येक जगह विधारकत्व क्यों नहीं देखा जाता। विमान के समान सुई हवा में क्यों नहीं टिकती। कोई भी पक्षी अपने पंखों को सिकोड़ कर हवा में टिका नहीं रह सकता। इसका विधारक प्रयत्न पंख फैलाने पर ही क्यों सफल हो पाता है। अन्य दशा में क्यों नहीं। इसके पंख फैलाने का विधारण से क्या सहसम्बन्ध है। इन सब प्रश्नों के उत्तर के लिये विधारकत्व का कोई अलग ही नियम अपेक्षित है।

आर्किमिडीज का नियम— आज से लगभग सवा दो हजार वर्ष पूर्व महान् वैज्ञानिक आर्किमिडीज (Archimedes 287-212 B.C.) ने इस विषय में जल तथा वायु में समान रूप से लागू होने वाले एक प्रसिद्ध भौतिक नियम की खोज की थी। यह नियम आज भी पानी के जहाज के तैरने तथा हवाई जहाज के उड़ने की उतनी ही सटीक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

वायु में प्रक्षिप्त पिण्ड में दो प्रकार के बल विपरीत दिशा में कार्यशील होते हैं। प्रथम—पृथिवी का गुरुत्वीय बल पिण्ड को नीचे लाने की चेष्टा करता है। द्वितीय —वायु का उछाल बल उसे ऊपर रोकना चाहता है। विविध परिस्थितियों में जो बल विजयी होता है, वही क्रिया सम्पन्न होती है। इन परिस्थितियों का निरूपण इस प्रकार है—

I कभी पिण्ड के अधिक घनत्व तथा कम आयतन के कारण उस (पिण्ड) का भार उसके द्वारा हटाए गए वायु के भार से अधिक होता है। इस दशा में पिण्ड नीचे गिर जाता है। यहाँ पिण्ड द्वारा हटाई गई वायु का भार उस पिण्ड के भार की अपेक्षा कम होता है। अतः सापेक्षतः कम भार वाली विस्थापित वायु में लगे कम उत्प्लावन बल पर सापेक्षतः अधिक भार वाले पिण्ड पर लगा अधिक गुरुत्वीय बल विजय प्राप्त करते हुए उसे नीचे ले आता है।

II कभी वस्तु के कम घनत्व तथा अधिक आयतन के कारण उसका भार उसके द्वारा हटाए गए वायु के भार से कम होता है। इस दशा में वस्तु हवा में तैरती रहती है। ऐसी वस्तु काफी अधिक वायु को विस्थापित करती है, जिसका (विस्थापित वायु का) भार उस वस्तु के भार की अपेक्षा अधिक होता है। ऐसी दशा में सापेक्षतः अधिक भार वाली विस्थापित वायु का उत्प्लावन बल सापेक्षतः कम भार वाली वस्तु पर लगे गुरुत्वीय बल पर विजय प्राप्त करते हुए उसे ऊपर तैरांता रहता है।

उदाहरण के लिये हाइड्रोजनं गैस का भरा गुब्बारा हवा में तैरता रहता है।

सामान्य वायु–दाब में 1 क्यूबिक मीटर हाइड्रोजन 0.9N. भार रखती है, जबकि 1 क्यूबिक मीटर हवा 13N. वजन रखती है। इस प्रकार 1 क्यूबिक मीटर आयतन का हाइड्रोजन का गुब्बारा अपने भार से कहीं अधिक भार वाली वायु को विस्थापित करेगा[1]। ऐसी दशा में गुब्बारे के भार के सापेक्ष अधिक भार वाली विस्थापित वायु का अधिक उत्प्लावन बल इस गुब्बारे को ऊपर तैराता रहता है।

इसी प्रकार हवाई छतरी या पैराशूट (parachute) अपने बहुत बड़े आयतन के द्वारा अपने भार से अधिक वायु को विस्थापित करता है। अतः इस पर वायु का उछाल बल बहुत बढ़ जाता है तथा यह हवा में तैरते हुए बहुत धीरे–२ नीचे आता है।

तिनके, पत्ते, कपास के गुच्छे आदि हवा में उड़ते हुए सामान्यतः यही प्रक्रिया अपनाते हैं। इन गुच्छों में भरे बीज गुच्छों से कहीं अधिक भारी होते हैं। फिर भी ये पैराशूट के समान अपने विस्तृत आकार के द्वारा इन बीजों सहित हवा में उड़ते रहते हैं। चमेली, गोखरू या थिस्ल् (thistle) आदि के बीज इसी प्रकार के होते हैं। प्रकृति ने इन्हें अन्यत्र पहुँचाने तथा इस प्रकार अन्यत्र पनपने के लिये कितना बढ़िया रास्ता अपनाया है!

ये गुच्छे, पत्ते इत्यादि अपने इसी विस्तृत आकार के द्वारा हवा में आसानी से उड़ पाते हैं। अगर इन्हें दबा कर एक पिण्ड का रूप दे दिया जाय तो ये सामान्यतः हवा में अपनी वह गति नहीं रख पाते। स्पष्टतः इन सबमें पैराशूट का सिद्धान्त लागू होता है।

धूल के उड़ने में भी यही सिद्धान्त उपयोगी है। सामान्यतः हम यह कहने के अभ्यस्त हैं कि धूल हल्की होने के कारण हवा में उड़ती रहती है। पर यह कहना सही नहीं है। धूल के कण वायु की अपेक्षा बहुत अधिक भारी होते हैं। पत्थर के कण १,५००गुना तथा लोहे के कण ६,०००गुना अधिक भार रखते हैं। पर धूल–कणों के सतह–भार का अनुपात अन्य बड़े पिण्डों के इस अनुपात से कहीं अधिक होता है। अन्य शब्दों में कहें तो बड़े पिण्डों में जो विस्तार तथा भार का अनुपात है, उसकी अपेक्षा धूल–कणों की सतह का विस्तार उसके भार से कहीं

---

1. At normal pressure, 1 cubic metre of hydrogen weighs only 0.9N----whereas 1 cubic metre of air weighs 13 N. Hence it follows that a baloon 1 cu m in volume, filled with hydrogen, is acted upon, in the air, by a buoyant force equal to the weight of 1 cu m of air, i.e. 13 N, and such a balloon can lift a load that weighs 13 N- 0.9N = 12.1 N. —Physics, A.V. Peryshkin, Moscow, Page 122

अधिक होता है[1]। स्पष्टतः यह स्थिति पैराशूट जैसी है। क्योंकि वहाँ भी उस छतरी की बाहरी गोलाकार परिधि का विस्तार बीच की डण्डी की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। अतः यह कहना अधिक सही है कि धूल–कण अपनी सतह के अधिक विस्तार के द्वारा अपने भार की तुलना में अधिक भार वाली वायु का विस्थापन करते हैं। इस प्रकार ये वायु की अपेक्षा हल्के होने से नहीं, अपितु इनके द्वारा विस्थापित वायु की अपेक्षा हल्के होने से विस्थापित वायु के उछाल बल के द्वारा उड़ते रहते हैं।

पर धरती पर टिके हुए पत्ते या धूल–कण तेज हवा चलने पर ही उपर उड़ना शुरू करते हैं। इस प्रक्रिया में महान् वैज्ञानिक 'बरनौली' (Burnoully) का द्रव तथा गैस में समान रूप से क्रियाशील सिद्धान्त लागू होता है। उनके अनुसार जब किसी तरल पदार्थ का वेग अधिक होता है तो उसका दाब कम हो जाता है तथा जब वेग कम होता है तो दाब अधिक हो जाता है। आँधी चलने पर ऊपर की वायु का दबाव काफी कम हो जाता है। अतः यह वायु धरती के इन पत्तों को पहले के समान नहीं दबा पाती। परिणामतः ये उड़ने लगते हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि आँधी चलने पर छप्पर या टीन की छत आदि उड़ जाती है। जब कि बाकी मकान सुरक्षित रहता है। प्राचीन काल से ही इस प्रकार की आँधी लोगों को बहुत कष्ट देती रही है। महावैयाकरण पाणिनि ने पाथे हुए कण्डे वाले छप्पर उड़ाने वाली भीषण आँधी के लिये 'करीषंकषा वात्या' इस विशिष्ट प्रयोग की सूचना दी है[2]। इसके उड़ने का भी कारण यही है कि छप्पर के ऊपर बहने वाली हवा का दबाव कम हो जाता है। जब कि कमरे के अन्दर की हवा का दबाव लगभग उतना ही बना रहता है। अतः यह अधिक दबाव वाली हवा इसे ऊपर उठा देती है।

विमान उड़ने में भी यही सिद्धान्त क्रियाशील होता है। यद्यपि विमान का भार वायु की अपेक्षा अत्यधिक है। विमान के पंखों की आकृति इस प्रकार बनाई जाती है कि इनकी ऊपरी सतह पर हवा का वेग अधिक तथा नीचे की सतह पर कम रहे। हवा का वेग बढ़ाने के लिये विभिन्न चलित्र या प्रोपेलर (Propeller) का

---

1. But all of these materials are hundreds and thousands of times heavier than air; stone is 1500 times heavier; iron 6,000 times. —The point is that for small specks the surface - to - weight ratio is larger than for large bodies. Stated another way, the particles' surfaces are relatively large for their weight.

—Fun with maths and physics, Y.I. Perelman Moscow, Page 68.

२. सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः। —अष्टाध्यायी ३.२.४२

उपयोग किया जाता है। छोटे जहाज को उठाने के लिये हवा का घेग कम से कम ६० कि.मी. प्रति घण्टा होना चाहिये। इस वेग से ऊपर की हवा का दाब कम तथा नीचे का अधिक होने पर यह ऊपर उठने को विवश हो जाता है। डैनों को नीचे से टेक मिलने से तथा ऊपर की ओर खींचने वाले सम्मिलित बलों से यह ऊपर उठता जाता है।

२. पक्षियों का उड़ना– पक्षियों के पास ऊपर की हवा को विरल बनाने के लिये कोई चलित्र या प्रोपेलर नहीं होता। अतः ये ऊपर उड़ने के लिये अपने पंखों को जोरों से फड़फड़ाते हुए नीचे की हवा को दबाते हैं। ऐसी दशा में न्यूटन के गति विषयक तृतीय नियम के अनुसार हवा भी इनके पंखों पर प्रतिक्रिया करते हुए अपने परिणामी बल से पक्षी को ऊपर की ओर उठाती है। यह बल पक्षी के गुरुत्व केन्द्र पर लगे गुरुत्वीय बल का विरोध करता है। पक्षी की ऊर्ध्वाधर दिशा में पक्षी के ठीक बीचोबीच इन बलों का सन्तुलन स्थापित होने पर यह हवा में टिक जाता है तथा परिणामी बल के बढ़ने के साथ–२ यह और ऊँचा उठता चला जाता है। खुले पंखों वाला आकाश में मंडराता पक्षी आर्किमिडीज के नियम के अनुसार अपने से अधिक भार वाली वायु को विस्थापित करता हुआ आकाश में टिका रहता है।

इस विवेचन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि पक्षी का पंख फैलाने के लिये प्रयत्न अन्ततः वायु के परिणामी बल द्वारा सन्तुलन प्राप्त करने के लिये अथवा अधिक भार वाली वायु के विस्थापन के लिये है। वायु की अनुपस्थिति में वह ऐसा नहीं कर सकता। अतः वायु के सहयोग के बिना कोई भी पक्षी या कोई भी विमान नहीं उड़ सकता। चन्द्रमा के निर्वात आकाश में पक्षी के पंख बिल्कुल बेकार होंगे। इस प्रकार हवाई जहाज से चन्द्रमा की यात्रा नहीं की जा सकती। उसके लिये रॉकेट जैसी कोई अन्य विधि अपनानी होगी। महान् दार्शनिक काण्ट का मानना है कि इस विश्व में जो वस्तु किसी का प्रतिरोधक बन कर सामने आती है, वही उसका सही उपयोग होने पर परम सहायक होती है। जो हवा प्रारम्भिक क्षणों में चिड़िया के उड़ने का विरोध करती है, वही उसकी प्रत्येक उड़ान के लिये अनिवार्य शर्त सिद्ध होती है[1]।

३. गतिशील बाण के नीचे न गिरने में महर्षि कणाद का सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान के समकक्ष– महर्षि कणाद तथा उनके व्याख्याकारों ने माना है कि गतिशील बाण या पिण्ड के पतन में उसकी गति ही प्रतिबन्धक होती है।

1. The very element that offers the opposition to flying is at the same time the condition of any flight whatever. —Immanuel Kant

उसकी क्षैतिज गति उसके अधोदिशा में पतन का विरोध करती है। यह सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह निर्वात में भी लागू होता है। अतः इसकी विस्तृत व्याख्या से ग्रहों के भी नीचे न गिरने की व्याख्या की जा सकती है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसकी व्याख्या यह है कि किसी पिण्ड के ऊपर फेंकने पर पिण्ड की गतिज ऊर्जा पृथ्वी के आकर्षण बल के विरुद्ध कार्य करने में व्यय होती है। वायु आदि के प्रतिरोध से इसकी गति तथा गतिज ऊर्जा भी निरन्तर क्षीण होती रहती है। अतः अन्ततः इस पर पृथ्वी का गुरुत्व बल विजय प्राप्त कर लेता है तथा इसके परिणामस्वरूप नीचे की ओर पतन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

किसी धनुष से फेंका गया बाण अपनी गति के द्वारा गुरुत्व बल का विरोध करते हुए अपने मेहराबी पथ में पहले ऊपर जाता है। ऊपर जाने तक इसकी गति पृथ्वी के गुरुत्व बल का प्रतिबन्धक होती है। उसके पश्चात् गुरुत्व बल के विजयी होने पर यह नीचे आने लगता है। इस समय दो दिशाओं में दो गतियाँ एक साथ सम्पन्न होती हैं। प्रथम–बाण की क्षैतिज दिशा में गति। दूसरी– पृथ्वी के गुरुत्व बल से ऊर्ध्वाधर दिशा में गति। वायु आदि इसकी क्षैतिज दिशा में गति का तीव्र से तीव्रतर विरोध करते हैं। इससे बाण की मन्दायमान क्षैतिज गति गुरुत्व बल से प्रयुक्त ऊर्ध्वाधर गति का विरोध करने में मन्द पड़ती जाती है। इस दशा में गुरुत्व बल इसकी क्षैतिज गति या चाल का विरोध न करते हुए भी ऊर्ध्वाधर दिशा में बाण की तीव्र से तीव्रतर गति सम्पादित करता जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि ये दोनों गतियाँ अलग–२ हैं। यदि थोड़ी देर के लिये वायु के प्रतिरोध को उपेक्षित मान लें तो कहना होगा कि बाण उसी वेग से क्षैतिज दिशा में चलता रहेगा पर गुरुत्व बल से ऊर्ध्वाधर दिशा में एक सेकेण्ड में ५ मीटर, दो सेकेण्ड में ४ X ५ मीटर तथा तीन सेकेण्ड में ६ X ५ मीटर का रास्ता तय करेगा। इस प्रकार तय किया गया फैसला समय के वर्ग के अनुक्रमानुपात में बढ़ता है[1]। अगर कोई पिण्ड बिना रुकावट के १०० सेकेण्ड के लिये गिर सके तो वह इस पूरे समय में लगभग ५० किलोमीटर का रास्ता तय करेगा। जबकि पहले १० सेकेण्डों में केवल आधा किलोमीटर ही चल पावेगा[2]।

---

1. If a body travels 5 m in one second, then in two seconds it wil travel 4 x 5m, in three seconds 9 x 5 metre. The distance travelled grows in proportion to the square of the time. —Physics for everyone, Book 1, L.D. Landau, Page 61

2. If a body could fall without hindrance for some 100 S, it would cover an enormous distance from the beginning of its fall - about 50 km. Moreover only a mere 0.5 km. would be covered in the first 10 S. —Ibid.- Page 61

इस प्रकार बाण तीव्र से तीव्रतम गति से नीचे की ओर जाता है। पृथ्वी का स्पर्श करने पर उसके घर्षण बल से इसकी क्षैतिज गति तुरन्त ही रुक जाती है। इससे प्रकट है कि गतिशील बाण में जिस समय जो बल अधिक प्रबल हो, वह अपने से विरोधी दिशा में लगे बल के कार्य का प्रतिबन्धक होता है। पर अविरोधी दिशा की गति का प्रतिबन्ध न करते हुए अपने बल की दिशा में गति का सम्पादक होता है। बाण अपने प्रथम क्षणों में ऊपर जाते हुए ऊर्ध्वाधर दिशा में लगे गुरुत्व बल का प्रतिरोध करता है। पश्चात् गुरुत्व बल क्षैतिज दिशा में गति या चाल का विरोध न करते हुए ऊर्ध्वाधर दिशा में गति को निरन्तर वर्धमान वेग से सम्पन्न करता है।

४. पृथिवी तथा अन्य ग्रहों का नीचे न गिरना—पिछले उपवर्ग में यह कहा जा चुका है कि कणाद के अनुसार किसी पिण्ड की गति उसके पतन का प्रतिबन्धक होती है। वास्तव में यही सिद्धान्त अपने परिष्कृत रूप में यहाँ लागू है।

इसके लागू होने में दर्शन की समस्याओं का वर्णन ऊपर किया गया है। संक्षेपतः किसी पिण्ड की स्थिरता की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पर पिछले परिच्छेद में न्यूटन के प्रथम नियम के अनुसार बताया गया है कि गतिशील पिण्ड की गतिशीलता भी उतनी ही स्वाभाविक है। अतः वायु आदि किसी प्रतिबन्ध के अभाव में यह सर्वथा सम्भव है कि ये ग्रह सर्वदा गतिशील बने रहें तथा अपनी इस गति से गुरुत्व बल का विरोध करते रहें।

दूसरा दर्शन का सिद्धान्त यह है कि गुरुत्व पिण्ड में अवस्थित होता है तथा यह पिण्ड की अधोदिशा में ही पतन का स्वभावतः प्रेरक होता है। यहाँ यह नहीं सोचा जा सका कि पिण्ड में अनिवार्यतः स्थित यह गुरुत्व जो कि गुण या बल है, इसकी प्रेरणा आखिर अधोमुखी ही क्यों होती है। इस बल के किसी विशेष दिशा में न लगने की स्थिति में इसे सभी दिशाओं में प्रसृत होने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिये। अतः इसके प्रभाव से इस पिण्ड की गति ऊर्ध्वमुखी क्यों नहीं हो जाती? यह सुविदित है कि महान् वैज्ञानिक न्यूटन के सामने सेव गिरने पर इसी प्रश्न के उठने पर उनके द्वारा पृथिवी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सिद्धान्त की खोज सम्भव हुई थी। यह सिद्धान्त कहता है कि विश्व का प्रत्येक पिण्ड एक दूसरे को आकर्षित करता है। किन्हीं दो पिण्डों के मध्य आकर्षण बल उनके द्रव्यमानों के गुणनफल का अनुक्रमानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है[1]। बल सदा युग्म में उपलब्ध होता है। हम क्रिया तथा

1. The force of attraction between two bodies is directly proportional to the product of their masses and inversely proportional to the square of the distance between them.
—Newton's law of universal gravitation.

प्रतिक्रियाशील दोनों पिण्डों में विपरीत दिशा में बल को लगा हुआ पाते हैं[2]।

इस सिद्धान्त के अनुसार पृथिवी पिण्डं को नीचे की ओर आकर्षित करती है तथा साथ ही ऊपर फेंका गया पिण्ड पृथिवी को अपनी ओर आकर्षित करता है। इस प्रकार दोनों में परस्पर विपरीत दिशा में बल लगे हैं। पर पिण्ड की तुलना में पृथिवी का द्रव्यमान अत्यधिक है। अतः वह पिण्ड को अपनी ओर खीचनें में सफल हो जाती है। पृथिवी तथा अन्य ग्रहों की तुलना में सूर्य का द्रव्यमान लाखों गुना अधिक है। अतः सूर्य के द्वारा पृथिवी आदि को अपनी ओर आकर्षित कर लेने की प्रवृत्ति होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार ग्रहों के पृथिवी में पतन की नहीं अपितु पृथिवी सहित सभी ग्रहों के सूर्य में पतन की सम्भावना बनती है।

यहाँ पृथ्वी की निरन्तर स्वाभाविक गति ही पृथ्वी के सूर्य में पतन का प्रतिबन्धक सिद्ध होती है। गति अवस्था के जड़त्व के नियम (Law of Inertia of motion) के अनुसार पृथ्वी समान वेग से अपनी सीधी दिशा में गति करना चाहती है। सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा इसे अपनी ओर ऊर्ध्वाधर दिशा में मुड़ने को बाध्य करता है। पृथ्वी की चाल तथा सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से प्रयुक्त बलों का सन्तुलन ही पृथ्वी को सूर्य में गिरने नहीं देता। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि सूर्य का आकर्षण बल पृथ्वी की गति का नहीं, अपितु इसका दिशा का सन्तुलित विरोध करता है।

इस प्रक्रिया को समझने के लिये मान लें कि पृथ्वी से कोई उपग्रह अन्तरिक्ष में फेंका गया है। कलन बताते हैं कि यदि इसे कम से कम ८ किलोमीटर प्रति सेकेण्ड का वेग प्रदान करते हुए ३०० किलोमीटर की ऊँचाई पर पृथ्वी की वृत्तीय कक्षा में भेज दिया जाय तो यह नीचे पृथ्वी पर नही गिरेगा, अपितु पृथ्वी के चारों ओर परिभ्रमण करने लगेगा। यह उपग्रह अन्तरिक्ष में जडत्व नियम के अनुसार समान वेग से समान दिशा में गति करना चाहता है। पर पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण इसके पथ को अपने ऊर्ध्वाधर दिशा में वक्रित करता है। उपग्रह के इस वेग में यह आकर्षण पृथ्वी तल की वक्रता के बराबर ही वक्रित कर पाता है, इससे अधिक नहीं। मान लीजिये यह उपग्रह A. बिन्दु से एक सेकण्ड में ८ कि. मी. दूर B. बिन्दु पर पहुँचता है। इस एक सेकेण्ड में पृथ्वी इसको ५ मीटर नीचे की ओर वक्रित करती है। ५ मीटर वही दूरी है, जिसे पृथ्वी में गिरने वाला कोई

---

2. Therefore, forces possess a remarkable property : they are always found in pairs and are moreover equal in magnitude and opposite in direction. It is these two forces which are usually called 'action and reaction'.

— Physics fore every one, Page 27

भी पिण्ड आकर्षण के प्रभाव से अपने प्रथम सेकेण्ड में तय करता है (देखें पृष्ठ ५१) इस एक सेकेण्ड के पश्चात् ८ कि.मी. दूर B. बिन्दु पर ५ मीटर नीचे गिरने पर भी उपग्रह की पृथ्वी से उतनी ही ऊँचाई रह जाती है,जितनी एक सेकेण्ड पहले थी। क्योंकि पृथ्वी के गोल होने से उसका धरातल हर बिन्दु पर वक्रिमा धारण करता या झुकता जाता है। इस दशा में उपग्रह नीचे नहीं गिरता, अपितु पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है। पर बाण शीघ्र ही धरती पर गिर जाता है। क्योंकि इसके न्यून वेग के कारण क्षैतिज दिशा में तय की गई कम दूरी के बीच पृथ्वी अपनी ओर अधिक दूरी तक आकर्षित कर लेती है। इस प्रकार ऊर्ध्वाधर दिशा में इसके पथ की वक्रता धरातल की वक्रता से कहीं अधिक होती है। इस दशा में बाण का पृथ्वी पर गिरना अनिवार्य है।

यह पृथ्वी २६.२ कि.मी. प्रति सेकेण्ड की गति से परिभ्रमण करती हुई सरल रेखा में भागना चाहती है। पर सूर्य अपने गुरुत्वाकर्षण बल से इसे अभिकेन्द्रीय बल (Centripetal force) प्रदान करते हुए इसे इसकी स्पर्श रेखा से प्रति सेकेण्ड ३ मि.मी. का विचलन प्रदान करते हुए इसके पथ को वक्रित करता है तथा इस प्रकार इसे अपने चारों ओर परिभ्रमण के लिये विवश करता है। पृथ्वी तथा सूर्य के दोनों बल सुनिश्चित दूरी में सुनिश्चित अनुपात में लगे रहते हैं। यदि पृथ्वी की गति रुक जाय तो यह सीधे सूर्य की ओर खिंचने लगेगी तथा लगभग २ मास में सूर्य में समा जावेगी। इसके विपरीत यदि सूर्य की आकर्षण शक्ति समाप्त हो जाय तो यह सूर्य का परिभ्रमण बन्द कर देगी तथा सीधी रेखा में अन्तरिक्ष की गहराइयों में चल देगी[१]!!

इस विवेचन से सिद्ध है कि ग्रहों का सूर्य में अपतन इनकी अतिसुनिश्चित गति, अति सुनिश्चित दूरी तथा इनके बलों के अतिसुनिश्चित अनुपात के कारण सम्भव होता है। दर्शनशास्त्र में ईश्वर–संयोग द्वारा जो ग्रहों के अपतन की बात कही गई है, उसका अर्थ यही कि सर्वव्यापक ईश्वर की भौतिक शास्त्रविषयक महान्तम सूक्ष्मेक्षिका के द्वारा यह सम्भव हो सका है। इन भौतिक सिद्धान्तों को जानकर हम उसकी सूक्ष्मेक्षिका को कुछ अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। जिस ईश्वर–संयोग से गति, दूरी आदि का यह अनुपात सुनिश्चित हुआ है, सचमुच वह महान्तम भौतिक वैज्ञानिक ईश्वर है!!

---

१. तारे मनुष्य और परमाणु, प्रथम भाग – हींज हैबर – अध्याय ६ गोलों का संगीत पृ. ६०

८. हवा का कितना दबाव!
(वायु का सम्पीडकत्व)

पिछले परिच्छेद के विवरण से प्रकट है कि दर्शनशास्त्र में अनेक भौतिक घटनाओं की व्याख्या के लिये वायु के विधारकत्व को स्वीकार किया है। इससे ही वायु का सम्पीडकत्व अथवा दबाव भी सिद्ध हो सकता है। जो वायु नीचे से ऊपर की ओर उछाल बल लगाते हुए आकाश में स्थित पक्षी को विधारित करती है, वही धरती पर रहने वाले पक्षी को सम्पीडित भी करती है। पृथिवी आदि हर स्पर्श वाले विधारक द्रव्य में ऐसा ही देखा गया है। अतः दर्शन की भाषा में इसका सम्पीडकत्व इस अनुमान से सिद्ध हो सकता है– 'वायु में सम्पीडकत्व या दबाव है, स्पर्श वाली होकर विधारक होने के कारण, पृथिवी आदि के समान'।

फिर भी सामान्य जीवन में हम हवा के दबाव को आसानी से उपलब्ध नहीं कर पाते। इसका कारण यह है कि वायु प्रत्येक वस्तु में हर समय दबाव डालती रहती है। हमें इससे भिन्न स्थिति कभी उपलब्ध नहीं हो पाती। हम किसी भी वस्तु को उससे भिन्न वस्तु की पीठिका में जान पाते हैं। महाकवि श्रीहर्ष ने एक सुन्दर उक्ति में कहा है कि–

सिते हि जायेत शितेः सुलक्ष्यता!

अर्थात् सफेद चादर में काले अक्षर साफ दिखाई पड़ते हैं। सांख्य दर्शन में कहा है कि 'समानाभिहार' अर्थात् दो वस्तुओं में समानता की दशा में हम उसे अतिरिक्त या विशिष्ट रूप में उपलब्ध नहीं कर पाते। जैसे मेघ से तालाब में गिरी पानी की बूँदों को अलग से नहीं जानते[1]। आधुनिक विज्ञान में भी इसके बहुत से उदाहरण दिये जाते हैं। जैसे हरी घास पर हरे रंग के टिड्डे को सामने चीखते रहने पर भी आसानी से नहीं देख पाते। इसी प्रकार जो भौतिक घटना हर जगह हर समय निरन्तर एक ही प्रकार के प्रभाव को उपलब्ध कराती है, उसकी विशिष्टता या अतिरिक्तता हमारी आँखों से सदा के लिये ओझल हो जाती है। हवा के दबाव की अनुपलब्धि का यही रहस्य है।

पर इतने से हम इस दबाव की उपेक्षा नहीं कर सकते। क्योंकि इस विश्व में सभी वस्तुओं पर पड़ने वाला हवा का दबाव सचमुच बहुत अधिक है। १६५४ ई.

१. समानाभिहारात् (अनुपलब्धिः) – यथा तोयदविमुक्तानुदबिन्दून् जलाशये न पश्यति।
—सांख्यकारिका ७ पर तत्त्वकौमुदी।

में जर्मनी के रेंसबर्ग शहर में ओटो वान गैरिक ने हवा के इस कल्पनातीत दबाव को बड़े ही नाटकीय ढंग से दिखाया था। उस प्रदर्शन के लिये ताँबे के दो अर्धगोले लिये गए। इन्हें एक गोल छल्ले से जोड़ा गया। इन अर्धगोलों में ४ कड़े लगाए गए। इनमें रस्सा फँसा कर घोड़ों के साथ बाँधा गया। एक अर्धगोले में एक नल लगाया गया। इस नल को वायु–चूषण पम्प के साथ जोड़ कर गोले के भीतर की पूरी हवा बाहर निकाल ली गई। अब इन गोलों को अलग–२ करने के लिये १–२ नहीं, अपितु ८–८ घोड़े दोनों तरफ जुतवाए गए। तब जाकर इनकी सम्मिलित शक्ति से गोली छूटने जैसी धमाकेदार आवाज के साथ वे गोले अलग हो पाए। पर नल की मूठ घुमा कर हवा के अन्दर जाने का रास्ता खोल देने पर हाथों से ही इन गोलों को अलग किया जा सकता था।

इस प्रयोग से सिद्ध हुआ कि गोले के बाहरी सतह वाली हवा गोले पर १६ घोड़ों के बल के समतुल्य जबर्दस्त दबाव डालती है। पर इसके अन्दर की हवा विपरीत दबाव डालते हुए इस बल को निष्प्रभावी करती है अथवा दोनों बलों को सन्तुलन में ला देती है। इस अन्दर की हवा निकाल देने पर केवल बाहरी हवा ही दबाव डालती है, अन्दर वाली विपरीत दबाव नहीं। तब हम इसके अकल्पनीय प्रभाव का अनुभव कर पाते हैं।

अन्य सभी वस्तुओं के साथ–२ स्वयं हमारे ऊपर भी हवा का ऐसा ही जबर्दस्त दबाव पड़ता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार धरती के १ वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्रफल को वातावरण का लगभग ३०० किलोमीटर ऊँचा वायुस्तम्भ १ किलोग्राम वजन के बल से दबाता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्गमीटर पर यह लगभग १०००० किलोग्राम वजन के बल से दबाव डालता है। यदि मनुष्य के शरीर का औसत क्षेत्रफल १.५ मीटर^{२} मानें तो इस पर सभी ओर से कुल मिलाकर १५,००० किलोग्राम का दबाव पड़ता है। फिर भी हम इस दबाव से सदा प्रभावित होने के कारण इसका अनुभव नहीं कर पाते। यह दबाव आगे, पीछे, ऊपर, नीचे सब तरफ से समान रूप से क्रियाशील होकर हमें सन्तुलन में ला देता है। हमारे सामने वाली हवा पीछे की ओर वैसा और उतना ही दबाव डालती है, जितना पीछे वाली हवा आगे की ओर। इसी प्रकार शरीर के अन्दर रहने वाली वायु बाहर की ओर समान दबाव डालते हुए शरीर पर ऊपर से पड़ने वाले वायु–दाब को निष्प्रभावी बनाती हैं। इस प्रकार हम दबने से बच जाते हैं। हमारे शरीर में अनगिनत रोमकूपों से तथा श्वास के उपाय से हवा अन्दर प्रविष्ट होती रहती है। यह अन्दर की हवा बाहरी वायु–दाब को साधे रहती है। पर इस सन्तुलन के भंग होने पर हम इसके

जबर्दस्त दबाव का अनुभव कर सकते हैं। पहाड़ों पर बाहरी वायुदाब कम होने पर अन्दर की नसों में अधिक वायुदाब से उन नसों के फटने तथा उनसे खून निकलने की स्थिति पैदा हो जाती है।

ऐसे ऊँचे स्थानों पर वायुदाब की कमी के अन्य अनेक प्रकार के प्रभाव देखे जा सकते हैं। वहाँ आग की अच्छी आँच पर भी खुले बर्तन में दाल बहुत मुश्किल से गलती है। उस समय ही हम यह भली प्रकार अनुभव कर पाते हैं कि दाल गलने में वायुदाब का कितना बड़ा योगदान है! वायुदाब कम होने पर दाल न गलना मुहावरा नहीं, वरन् सचाई है! वास्तव में नीचे से आग की गर्मी के साथ–२ ऊपर से हवा के दबाव के सम्मिलित प्रभाव से ही कोई 'दाल' गलती है।

वायु–दाब तथा निर्वात के अनेक उपयोग

साइफन में दोनों का उपयोग– किसी मुड़ी हुई नली अथवा साइफन (siphon) के द्वारा टब के पानी को नीचे लाना वायुदाब तथा निर्वात का एक बहुप्रचलित उपयोग है। सामान्य दशा में किसी आधे भरे ड्रम के पानी को बाल्टी में उँडेलने के लिये वैसे ही झुकाना पड़ता जैसे किसी चायदानी को झुकाते हैं। पर साइफन के प्रयोग से यह कार्य बहुत आसान है। इसके लिये साइफन के एक सिरे को ड्रम के पानी में तथा दूसरे सिरे को बाल्टी में डालते हैं। इसमें डालने से पहले साइफन के अन्दर की हवा को चूस लेते हैं। अब इससे ड्रम का पानी तब तक बाल्टी में गिरता रहता है, जब तक ड्रम तथा बाल्टी के पानी का स्तर बराबर न हो जाय। इसके कार्यशील होने का कारण ड्रम के पानी की सतह पर पड़ने वाला वायुदाब तथा साइफन के अन्दर निर्वात होना है। यहाँ बाहरी वायुदाब पानी को ऊपर ठेल देता है तथा साइफन का निर्वात वायु के अधोगामी बल को निष्प्रभावी बनाता है। अगर पानी की सतह पर वायुमण्डलीय दाब न होता तो पानी की धारा मोड़ पर टूट जाती तथा यह बाल्टी में न गिर पाती। साथ ही अगर नाली में वायु बनी रहती तो वह अपने नीचे की ओर लगे बल से पानी को ऊपर न उठने देती।

धमनियों में रक्त के उत्क्षेप के लिये निर्वात का उपयोग– आधुनिक युग में निर्वात उत्पन्न करके दैनिक जीवन के अनेकानेक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। ट्रेनों में निर्वात बॉक्स (vacuum box) के द्वारा इन्हें नियन्त्रित करना इसका एक बहुप्रचलित उपयोग है।

हमारे शरीर में धमनी रूपी बन्द नालियों से रस, रक्त को ऊपर चढ़ाने के

लिये प्रकृति इसी निर्वात की अनूठी विधि को अपनाती है। शास्त्रों में इस प्रकार के मार्गों को नाली या नाडी नाम दिया है। संस्कृत में ड तथा ल अक्षरों में अभेद माना जाता है। एक ही वस्तु के दो छोटे–२ उपभेदों को अलग–२ इन अक्षरों से प्रकट किया जाता है। सांख्य में बाहरी रूप, शब्द आदि को इन्द्रिय की ओर पहुँचाने वाले मार्ग को 'इन्द्रिय–प्रणालिका' नाम दिया है। अमरकोश, वैद्यक शास्त्र आदि में नाली के समान रस, रक्त आदि को अन्यत्र पहुँचाने वाली धमनी को नाडी कहा है[1]।

दर्शन–ग्रन्थों में कहा है कि 'नाडी में 'व्यान' वायु अवस्थित होती है'। अथवा यह 'व्यान वायु गर्भ–नाडी में रस को पहुँचाती है'[2]। वैद्यक–ग्रन्थों में स्पष्ट कहा है कि 'विक्षेप' क्रिया वाली 'व्यान' वायु से रस–धातु सम्पूर्ण देह में एक साथ भेजा जाता है। रस स्वच्छ होकर वहाँ (फुफ्फुस या फेफड़े में) अवस्थित होता है। उसके पश्चात् 'व्यान' वायु से विक्षिप्त होकर सम्पूर्ण देह में पहुँचता है[3]।

इस विवरण से प्रकट है कि प्राचीन काल में धमनी में वायु द्वारा रस, रक्त का ऊपर पहुँचना माना जाता था। 'धमनी' शब्द की व्युत्पत्ति तथा इसकी व्याख्या भी इसी अर्थ को परिपुष्ट करती है[4]। यह ध्यान देने योग्य है कि उस समय अन्य देशों में भी धमनी को वातपूर्ण मानने की अवधारणा प्रचलित थी। इंग्लिश में इसके लिये artery शब्द प्रचलित है। कोश के अनुसार यह 'वायु–वृद्धि' अर्थ वाले दो शब्दों के मेल से निर्मित है[5]।

पर आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगों से सर्वथा स्पष्ट है कि धमनी अथवा संकुचन, प्रसरण आकार वाली नाडी में सर्वथा निर्वात होता है। वहाँ वायु का लेश–मात्र भी नहीं रह सकता। हमारा हृदय रक्त के साथ पहुँचे वायु–कण को

---

१. नाडी तु धमनिः शिरा। ——अमरकोश २.६.६५
नाडीव यद् वहति तेन मता तु नाडी। ——सुश्रुत, निदान–स्थान, १० वीं अध्याय

२. नाडीमुखेषु वितननाद् व्यानः। –श्लोक ४३ की मुक्तावली वायु–प्रकरण पर दिनकरी टीका
रसस्य गर्भनाडी– वितननाद् व्यानः। ——प्रशस्तपादभाष्य, वायु–प्रकरण पर कन्दली।

३. व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा। युगपत् सर्वतोऽजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा।
रसो यः स्वच्छतां यातः स तत्रैवावतिष्ठते। ततो व्यानेन विक्षिप्तः कृत्स्नं देहं प्रपद्यते।।
——अष्टांगहृदय सू. १२ (सर्वांग सुन्दरा)

४. ध्मानाद् धमन्यः। ——चरक, सूत्रस्थान ३० वाँ अध्याय

5. Artery- f. Gk arteria, Prob. f. airo raise. —Oxford English Dictionary.

बिल्कुल सहन नहीं कर पाता। आज कल अन्तःशिरा सूचीवेध (intravenous injection) लगाते समय सावधानीपूर्वक यह देख लिया जाता है कि सुई में द्रव ओषधि के साथ लेशमात्र भी हवा न रह गई हो। अन्यथा रोगी की तत्काल मृत्यु की सम्भावना हो जाती है।

उपरिलिखित साइफन के उदाहरण से स्पष्ट है कि धमनी रूपी बन्द नाली में वायु की उपस्थिति रस रक्त के ऊपर उठने में सहायता नहीं कर सकती। केवल गतिशील वायु ही किसी कण को अपने साथ भगा सकती है। पर नाली में बन्द वायु तो अपने अधोदिशा की ओर लगने वाले दबाव से रस, रक्त को ऊपर उठने से रोकने का ही काम करेगी। इसीलिये प्रकृति ने इस धमनी में सर्वथा निर्वात उपस्थित किया है।

रक्त को पम्प करने अथवा दबाव प्रदान करने के लिये हृदय के रक्त से भरे हुए आलिन्द (auricle) बड़ी जोर से आकुंचन करते या सिकुड़ते हैं। इससे रक्त निलयों (ventricle) में धकेल दिया जाता है। पश्चात् निलयों में आकुंचन होने पर यह महाधमनी की ओर धकेला जाता है। इस समय महाधमनी कपाट (aortic valve) रक्त को शिथिलित आलिन्द में लौटने से रोक देते हैं। इन धमनियों की भित्तियाँ लचीली होती हैं। अतः धमनियों में रक्त धकेले जाने के क्षण ये विस्तारित हो जाती हैं। इसके पश्चात् निलय के अनुशिथिलन के समय ये भित्तियाँ पूर्व अवस्था में लौट आती हैं।

धमनियों की यह स्थिति–स्थापकता या लचीलापन रक्त के दबाव को बनाए रखने के लिये बहुत उपयोगी है। भौतिक विज्ञान के नियम के अनुसार द्रव के प्रवाह का वेग नालिका के क्षेत्रफल के विपरीत अनुपात में होता है। अर्थात् नालिका का क्षेत्रफल अधिक होने पर द्रव का वेग कम तथा क्षेत्रफल कम होने पर उसका वेग बढ़ जाता है। इस प्रकार रक्त कम होने के क्षण ये धमनियाँ सिकुड़ कर भित्तियों द्वारा रक्त में प्रतिरोध उपस्थित करके इसमें दबाव बनाकर इसे वेगपूर्ण बनाए रखने में सफल होती हैं[1]।

अब कल्पना करें कि इन धमनियों में हवा भरी हो। ऐसी दशा में ये रक्त

---

१. धमनी दबाव को ऊँचा तथा कायम रखने के लिये पूर्वाकांक्षित शर्तें ये हैं– क. सबल पम्प (ख) धमनी तन्त्र की लचीली भित्तियाँ (ग) केशिकाओं में रक्त के बहाव के प्रति अपेक्षया उच्च प्रतिरोध। इस प्रतिरोध के बिना अर्थात् विवृत परिवहन में एक सबल पम्प भी दबाव को खास ऊँचा नहीं कर सकता।

—प्राणि शरीर का क्रियाविज्ञान, नटश्मिट नील्सन, द्वितीय अध्याय पृ. ३६–३७

की सतह तक नहीं सिकुड़ सकेंगी। जैसे आधे पानी तथा आधी हवा से भरा गुब्बारा पानी की सतह से भी अधिक फूला रहता है। ऐसा होने पर धमनी की अवकाशपूर्ण भित्तियाँ रक्त के ऊपर उठने के लिये अपने प्रतिरोध से उसमें दबाव नहीं बना सकेंगी। इसके विपरीत वायु नीचे की ओर दबाव बनाकर उसे नीचे जाने को प्रेरित करेगी। इस प्रकार रक्त का उत्क्षेप सम्भव नहीं हो सकेगा।

इस विवरण से सिद्ध है कि हृदय द्वारा प्रदान किये गए दबाव को दूर तक बनाए रखने के लिये धमनियों का निर्वात होना परम आवश्यक है। अतः प्रकृति ने रक्त के उत्क्षेप के लिये इसी विधि का उपयोग किया है।

विविध मौसम के लिये वायु–दाब का उपयोग– इस धरती के विविध मौसम बहुत कुछ वायु–दाब पर निर्भर होते हैं। सूर्यदेव की कृपा से हवा गर्म तथा हल्की होकर ऊपर उठती है। यदि इस प्रकार वायु–दाब अचानक एकदन कम हो जावे तो आँधी, तूफान आने की सम्भावना प्रबल हो जाती है। इसके एकदम कम होने का अर्थ आंशिक रूप से निर्वात उत्पन्न होना है। इस स्थान को भरने के लिये आस–पास की हवा बहुत तेजी से वहाँ पहुँचती है, जिसे हम 'आँधी' कहते. हैं। यदि वायुदाब धीरे–२ कम हो रहा हो तो गर्मी आने की तथा निकट भविष्य में वर्षा आने की सूचना प्राप्त होती है। वायुदाब के धीरे–२ बढ़ने पर वायु की शुष्कता तथां निकट भविष्य में वर्षा न होने का संकेत प्राप्त होता है।

आजकल वायुदाब को नापने का बहुत आसान उपाय बैरोमीटर (barometer) का प्रयोग है। इसका आविष्कार इटली के महान् वैज्ञानिक टौरिसेली (Torricelli) ने किया था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि धरती के हर वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्रफल पर पड़ने वाला वायुदाब ७६ सेंटीमीटर ऊँचे पारे के स्तम्भ के बराबर होता है। 1 cm^2 क्षेत्रफल पर इतने ऊँचे पारे के स्तम्भ का भार 1 kg f. तथा ठीक ठीक 1.033 kg.f. होता है। अतः एक वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्रफल पर मानक वायुमण्डलीय दाब उतना होता है जितना १ कि.ग्राम वजन इतने ही क्षेत्रफल में उपस्थित करता है[1]।

इस बैरोमीटर द्वारा किसी स्थान के वायुदाब का मान ज्ञात करके उस

1. A 76-cm column of mercury presses down on the support with the same force as the atmosphere. This mercury column with a cross-sectional area of 1 cm^2 presses down with a force of 1.033 KG f.

---- The average atmospheric pressure that is exerted on everything on the Earth is close to the pressure that 1 K.G. weight exerts on an area of 1 cm^2

—Physics for every one, Page 229

स्थान की समुद्र–तल से ऊँचाई आसानी से जानी जा सकती है। पहाड़ों पर ऊपर जाने पर वायु का घनत्व तथा दबाव लगातार कम होता जाता है। अतः किसी स्थान पर बैरोमीटर में वायुदाब के पाठ की समुद्र–तल के दाव से तुलना करके उसकी ऊँचाई का कलन किया जा सकता है। विश्व के सर्वोच्च पर्वत शिखर माउण्ट एवरेस्ट में वायुदाब समुद्र–तल के दाब का लगभग एक तिहाई है। इसके अनुसार इसकी ऊँचाई ८.८४८ कि.मी. तय की गई है।

इस विवरण से प्रकट है कि विश्व की प्राकृतिक घटनाओं में हवा के दबाव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है।

---

६. हवा में कितना वजन!
(वायु का गुरुत्व)

पिछले परिच्छेद में वायु के सम्पीडकत्व अथवा इसके दबाव को विस्तार से सिद्ध किया गया है। इससे ही इसके गुरुत्व को भी आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। क्योंकि कोई भी सम्पीडन उसके गुरुत्व का परिणाम या फल है। अथवा यों कहें कि गुरुत्व उस सम्पीडन का कारण है। अतः यह व्याप्ति आसानी से बन सकती है कि जहाँ–जहाँ सम्पीडन होता है, वहाँ–२ गुरुत्व होता है। फिर भी दर्शनशास्त्र में वायु के सम्पीडकत्व के उपलब्ध न होने की स्थिति में इसके गुरुत्व का भी प्रतिषेध किया जाता रहा है।

गुरुत्व का अर्थ (दर्शन और विज्ञान)– दर्शन के अनुसार गुरुत्व पिण्ड में नित्यसम्बन्ध से रहने वाला एक गुण है। इसके फलस्वरूप ऊर्ध्व दिशा में फेंका गया कोई पिण्ड वेग तथा क्रिया के क्षीण होने के पश्चात् पहले से विपरीत अधोदिशा में पतन क्रिया के लिये विवश होता है तथा इसी दिशा में किसी वस्तु पर दबाव डालता है। इस प्रकार यह पिण्ड के पहले क्षण के अधःपतन का प्रेरक अथवा उसका कारण होता है[१]।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार गुरुत्व एक बल है। किसी पिण्ड के अधःपतन की दशा में पृथ्वी का गुरुत्वीय बल पिण्ड की ओर लगा होता है। यही इसके पतन का प्रयोजक होता है। पृथ्वी जिस बल से पिण्ड को अपनी ओर आकर्षित करती है, उसे उसका गुरुत्वीय बल कहते हैं[२]। इस बल के परिणामस्वरूप कोई पिण्ड जिस बल से किसी अवलम्ब पर प्रभाव डालता है, उसे उस पिण्ड का भार कहते हैं[३]।

इन परिभाषाओं से सर्वथा स्पष्ट है कि दर्शनशास्त्र में 'गुरुत्व' शब्द से पृथ्वी के गुरुत्वीय बल का नहीं, अपितु 'गुरुत्व गुण' के रूप में पिण्ड के भार का निरूपण अभिप्रेत है।

गुरुत्व का अनुभव (दर्शन और विज्ञान)– दोनों शास्त्र इस तथ्य को

१. गुरुत्वम् आद्यपतनासमवायिकारणम् ——तर्कभाषा, प्रमेयनिरूपण, पृ.२०४

2. The force with which the earth attracts a body is called the force of gravity. —Physics, A.V. Peryshkin, Page. 59

3. The force with which a body acts on the support or suspension, as a result of attraction by the earth, is called the weight of the body. —Ibid, Page 60

समान रूप से स्वीकार करते हैं कि इस गुरुत्व को अनुमान से जाना जाता है। तराजू के किसी पलड़े पर किसी वस्तु को रखने पर वह झुक जाता है। इससे अनुमान होता है कि उस पलड़े पर दबाव डालने अथवा उसकी 'विशेष अवनति' का कारण कोई गुरुत्व गुण मौजूद है[१]। इसे तौलने के लिये किसी बाट को अन्य पलड़े पर रखते हैं। इससे वह वस्तु 'तुला के सदृश' अथवा 'तुल्य' बन जाती है। समान अर्थ में प्रयुक्त होने वाले 'तुल्य' शब्द का यही मौलिक अर्थ है[२]। इसे 'तुल्य' बनाने के लिये तोला, माषा, रत्ती आदि अनेक बाट काम में लाए जाते हैं। ये ही गुरुत्व के मात्रक हैं[३]।

इसी प्रकार किसी वस्तु को हाथ से उठाते समय हाथ के नीचे गिरने की ओर प्रवृत्ति होती है। इसे रोकने के लिये हाथों के तेजस् का उपयोग करना पड़ता है। इससे भी हाथ के ऊपर अवस्थित वस्तु में गुरुत्व गुण का अनुमान होता है[४]। कुछ दर्शनशास्त्री कहते हैं कि हाथों के स्पर्श से ही गुरुत्व का प्रत्यक्ष हो जाता है। पर न्याय में इसका तत्परता से खण्डन करते हुए इसे अनुमेय बताया है[५]।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी गुरुत्व बल तथा इससे निष्पन्न पिण्ड के भार को कमानीदार तुला (Spring balance) के माध्यम से अनुमान से जानते हैं। वस्तु में प्रयुक्त बल उसके द्रव्यमान के समानुपाती होता है। अर्थात् जिस वस्तु का द्रव्यमान जितना अधिक होता है, उसमें उतना ही अधिक गुरुत्वीय बल प्रयुक्त होता है। इससे वह उतना ही अधिक भारी होता है[६]। तुला में उसके सन्तुलन के लिये उतने ही अधिक भारी मात्रकों का उपयोग करना पड़ता है। आजकल इस बल का मात्रक (unit) न्यूटन (newton) है तथा द्रव्यमान का मात्रक मानक

---

१. द्रष्टव्य– न्यायकन्दली, गुरुत्वनिरूपण पृ. ६४१

२. नौवयोधर्म– – – (अष्टाध्यायी ४.४.९१) के अनुसार 'तुलया सम्मितं= सदृशम्, इस अर्थ में तुल्य शब्द को सिद्ध किया गया है।

३. गुरुत्वं रत्तिक– माषक– तोलकत्वादिभेदेन नानाविधं बोध्यम्।
— मुक्तावली पर किरणावली टीका पृ. १०३

४. यत्तूपरि स्थितस्य गुरुत्वं प्रतीयते तद्धस्तादीनाम् अधोगमनानुमानात्।
—न्यायकन्दली, गुरुत्व–प्रकरण, पृ. ६४०

५. ये तु त्वगिन्द्रियग्राह्यं गुरुत्वमाहुः, तेषामधःस्थितस्य द्रव्यस्य स्पर्शोपलम्भवद् गुरुत्वोपलम्भप्रसंगः।
——वही पृ. ६४०

6. Experiments show that the force of gravity is directly proportional to the mass of the body..........Therefore we say that a body having a large mass is heavy.
—Physics, Page 59.

किलोग्राम (standard kilogram) माना जाता है।

उपकरणों के बिना भी इस गुरुत्व का अनुमान होता है। किसी बोझ को लेकर ऊपर चलने पर गुरुत्व बल के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है। इसमें हमारी मांसपेशीय ऊर्जा व्यय होती है। इससे भी हम इस बल का अनुमान करते हैं।

वायु में गुरुत्व नहीं है (दर्शन)– इन अनुमानों से उपलब्ध न होने के कारण दर्शन में वायु में गुरुत्व को स्वीकार नहीं किया जाता है। वहाँ केवल पृथिवी तथा जल में गुरुत्व मान्य है। अतः रस गुण वाले पृथिवी, जल में गुरुत्व का साधर्म्य बताया गया है[1]। आगे चलकर यह स्पष्ट किया गया है कि जिन द्रव्यों का जिन गुणों के साथ साधर्म्य है, उनका उनसे भिन्न गुणों के साथ विरुद्ध धर्म है[2]। इस प्रकार गुरुत्व केवल पृथिवी तथा जल में समान रूप से परिव्याप्त है, उनसे भिन्न द्रव्यों में नहीं, यह सिद्ध होता है। इसीलिये वायु के ६ गुणों को गिनाने के प्रसंग में व्याख्याकारों ने इनके अन्तर्गत गुरुत्व का नाम नहीं लिया है[3]। यह माना गया है कि इस प्रसंग में द्रव्य में जितने गुण बताए गए हैं, उनमें उनसे एक भी कम या अधिक नहीं है। अतः वायु में ६ गुणों के अलावा १०वाँ गुरुत्व गुण नहीं रह सकता।

इसे सिद्ध करने में प्रमाण है कि दर्शनशास्त्र में वर्णित वायु के गुरुत्व से विहीन होने की मान्यता भारत के अलावा विश्व के अन्य भागों में भी हजारों वर्षों तक प्रचलित रही है। अनेक अवसरों पर इसके गुरुत्व को जानने के लिये अनेक प्रयोग किये गए। सभी प्रयोगों में इसकी गुरुत्वहीनता ही सिद्ध हुई। ग्रीस के महान् दार्शनिक अरस्तू का एक प्रयोग बहुत प्रसिद्ध है। इसके लिये उन्होंने चमड़े की मशक अथवा गुब्बारे में हवा भरी तथा उसे सावधानीपूर्वक तौला। उन्होंने हवा से खाली तथा पिचके हुए गुब्बारे का भी वजन लिया। उन्होंने यह पाया कि फूले तथा पिचके गुब्बारे के वजन में कोई अन्तर उपलब्ध नहीं होता। तब उन्होंने यह संघोषित कर दिया कि साधारण हवा द्रव्य के महत्त्वपूर्ण गुण 'गुरुत्व' को धारण नहीं करती[4]।

---

१. गुरुणी द्वे रसवती। ——कारिकावली श्लोक २८

२. यदुक्तं यस्य साधर्म्यं वैधर्म्यमितरस्य तत्। —— कारिकावली श्लोक २६

३. वायोर्नवैकादश तेजसो गुणाः।

——कारिकावली की किरणावली व्याख्या में उद्धृत प्राचीन श्लोक।

4. About two hundred and fifty years ago, it was generally thought that air was useless as a source of power, because it has no weight. An experiment of Aristotle was

इसमें सन्देह नहीं कि भारत में भी इस प्रकार के अनेक प्रयोग किये गए होंगे तथा यह पाया गया होगा कि वायु गुरुत्व के तोला, माषा, रत्ती आदि मांत्रकों से विभाजित नहीं होती। साथ ही वायु को उठाने में किसी बल के प्रयोग का भी अनुभव नहीं होता। इस प्रकार सभी अनुमानों के द्वारा गुरुत्व की उपलब्धि न होने पर दर्शनशास्त्र में यह तय मान लिया गया कि वायु में गुरुत्व नहीं होता।

गुरुत्व का जो कार्य अथवा फल है, उसकी भी वायु में उपलब्धि न होने के कारण इसे इस गुण से विहीन माना जाता रहा है। ऊपर कहा गया है कि ऊपर फेंके गए द्रव्य का अधोदिशा में पतन का कारण गुरुत्व होता है। पर हम देखते हैं कि वायु का अधःपतन नहीं, अपितु तिर्यग्गमन (lateral motion) होता है। अतः मान्य है कि इसमें अधः पतन का कारण गुरुत्व नहीं, अपितु तिर्यग्गमन का कारण कोई 'अदृष्ट' गुण वर्तमान होता है। अथवा सांख्य के अनुसार इसमें गुरुत्व के प्रतिद्वन्द्वी अथवा गुरुत्वाभावरूपी लाघव के द्वारा वायु की तिर्यग्गति सम्पन्न होती है[1]।

वायु में गुरुत्व है (विज्ञान)– आधुनिक विज्ञान इस विषय में सर्वथा असन्दिग्ध है कि पृथिवी के गुरुत्वीय बल के परिणांम–स्वरूप सभी पिण्डों के समान वायु में भी अवश्य ही भार होता है। विश्व में कोई ऐसा द्रव्य–कण नहीं जो अन्य कण को अपने बल से आकर्षित न करता हो। महान् वैज्ञानिक न्यूटन का एक स्वर्णिम नियम यह है कि किन्हीं दो कणों या उनके पिण्डों का आकर्षण–बल उनके द्रव्यमानों के गुणनफल का अनुक्रमानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है[2]। ऐसी दशा में वायु–द्रव्य कणों पर अतिविशाल द्रव्यसंहति वाली पृथ्वी का आकर्षण बल लगना तथा इसके परिणामस्वरूप वायु का किसी अवलम्ब पर दबाव आदि प्रभाव उत्पन्न करना तथा इस प्रकार 'भार'

---

supposed to have decided the matter. The Greek philosopher filled a bladder with air, and then carefully weighed it; he also weighed the bladder when it was empty and collapsed. Finding that there was no difference in weight between the inflated skin and the collapsed skin, he included that ordinary air was lacking in the chief property matter.—Hermsworth popular science, London Volume-4, Page 2639

१. तत्र कार्योद्गमने हेतुर्धर्मो लाघवं गौरवप्रतिद्वन्द्वि। .... तदेव लाघवं कस्यचित्तिर्यग्गमने हेतुर्भवति यथा वायोः। —सांख्यकारिका १३ पर तत्त्वकौमुदी।

लाघव के गुरुत्वाभाव अर्थ के लिये द्रष्टव्य—मुक्तावली, तैजसनिरूपण में रामरुद्री पृ.१३३

2. The force of attraction between two bodies is directly proportional to the product of their masses and inversely proportional to the square of the distance between them. —Physics for everyone, book-1, Page 190

प्रदर्शित करना अनिवार्य है। विश्व के किसी भी द्रव्य (matter) की यह स्पष्ट पहचान है तथा यह उसका अवियोजनीय धर्म है। इसके बिना हम उसे द्रव्य–कण के रूप में निरूपित नहीं कर सकते। वायु द्रव्य होने से उसमें भी यह पहचान अनिवार्यतः लागू है। आधुनिक विज्ञान में वायु के प्रत्येक घटक के छोटे से छोटे अंश का द्रव्यमान, इसका दबाव, भार आदि निर्धारित किया जा चुका है। यह कहा जा चुका है कि पृथ्वी के 1 cm^2 क्षेत्रफल पर लगभग 1 Kg f. के बराबर वायुमण्डलीय दबाव प्रयुक्त होता है। अतः स्पष्ट है कि १ वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र में वर्तमान वायुस्तम्भ का भार १ किलोग्राम के लगभग होता है।

इस विवरण से दर्शनशास्त्रियों की उस मान्यता का भी समाधान हो जाता है, जिसके अन्तर्गत वे लोग कहते हैं कि वायु में जो भी गुरुत्व है, वह उसमें मिश्रित धूल–कणों का है। इसमें प्रथम तो यह कहना है कि दर्शनशास्त्र का विवरण सामान्य वायु के लिये ही है तथा सामान्य दैनिक जीवन में वायु को धूल–कणों से सर्वथा विरहित करना आसान नहीं है। यदि यह मान भी लें कि दर्शन का विवरण धूल–रहित वायु के लिये है, तो भी उस धूल–रहित वायु को भी गुरुत्वहीन नहीं माना जा सकता। क्योंकि, जैसा कि ऊपर कहा गया, वायु के अलग–२ घटकों का भी द्रव्यमान आदि जाना जा चुका है। ऑक्सीजन के एक अणु का द्रव्यमान $१०^{-२५}$ किलोग्राम होता है। अर्थात् १० के आगे २४ शून्य रखने से जो संख्या बनती है, १ किलोग्राम के उतने हिस्से में से केवल एक हिस्सा ऑक्सीजन अणु का द्रव्यमान होता है। इस प्रकार वायु के सभी घटकों में स्पष्टतः गुरुत्व वर्तमान है।

अरस्तू का प्रयोग असफल क्यों हुआ— फिर भी यह जानना बहुत रोचक है कि भारत तथा ग्रीस में हजारों वर्षों तक वायु में गुरुत्व जानने के प्रयोग क्यों असफल होते रहे। अरस्तू के पूर्वोक्त प्रयोग में पिचके गुब्बारे में भी हवा वही तथा उतना ही दबाव उपस्थित कर देती थी, जो हवा से भरे हुए गुब्बारे में। अन्तर केवल यह होता था कि पिचके गुब्बारे में हवा ऊपर से दबाव डालती थी तथा भरे हुए गुब्बारे में अन्दर से[1]। गुब्बारे में से हवा को निकाल देने पर भी उसके ऊपर वाली हवा को तो हटाया नहीं जा सकता था। अतः गुब्बारे की दोनों दशाओं में तराजू के ऊपर वर्तमान हवा की मात्रा में कोई अन्तर नहीं आता था। अतः समान

1. **Aristotle's experiment was really ridiculous. When the skin of the bladder was being weighed, the same amount of air pressed on the scales as when the filled bladder was used. The only difference was that in one case nearly all the air was outside the collapsed skin, and in the other case a little of it was inside the filled bladder. —Hermsworth popular science, London, Volume 4, Page 2639**

वजन उपलब्ध होता था। हवा के वजन में अन्तर केवल तभी उपलब्ध हो सकता था, जब किसी दशा में हवा की मात्रा में अन्तर उपस्थित किया जा सकता।

ऐसे किसी प्रयोग के अभाव में आज से लगभग ३५० वर्ष पूर्व तक यही माना जाता रहा कि हवा में कोई वजन नहीं होता। १६५० ई० में ऑटो वान गैरिक ने इस प्रयोग के लिये चमड़े के सिकुड़ने वाले गुब्बारे के स्थान पर काँच का मजबूत गोला लिया तथा उसमें से हवा को निकाल कर खाली ग्लोब का वजन लिया। उसके पश्चात् उसमें हवा भर कर पुनः इसका वजन किया। ऐसा करने पर दोनों के वजन में स्पष्ट अन्तर उपलब्ध हुआ[1]। ऐसा इसलिये सम्भच हो सका, क्योंकि मजबूत गोले से हवा निकाल देने पर भी वह पिचका नहीं। इस प्रकार गोले के अन्दर के अवकाश में हंवा अपने वजन का प्रभाव नहीं दिखा सकी। इस रीति से वायु में भार को स्पष्ट सिद्ध किया जा सका।

यह ध्यान देने योग्य है कि पिचकने वाले गुब्बारे में भी यदि वातावरण में हवा के घनत्व से अधिक हवा को पम्प द्वारा भर दिया जाय तो भी यह अतिरिक्त हवा अपने वजन को प्रदर्शित कर सकती है। इसीलिये भौतिक विज्ञान की प्रचलित पाठ्य पुंस्तकों में हवा के भार को जानने के लिये 'फुटबाल के ब्लैडर' का प्रयोग लिखा जाता है। अरस्तू के समय ब्लैडर में संघनित हवा को न भरे जा सकने की स्थिति में इसका वजन उपलब्ध नहीं हो सका था।

भौतिक विज्ञान के अन्य ग्रन्थों में strong glass bulb अर्थात् मजबूत काँच के गोले के द्वारा इसे सिद्ध किया जाता है।इसे प्रदर्शित करने के लिये ऐसे गोले से हवा निकाल कर उसका वजन लेते हैं। इसके पश्चात् पाहू अथवा clamp को खोलकर इसके अन्दर हवा जाने देने के पश्चात् उसका वजन लेने पर हम देखते हैं कि तुला का वह सन्तुलन नहीं रहता। इसे पुनः सन्तुलन में लाने के लिये दूसरे पलड़े पर अधिक बाट रखना पड़ता है। इससे हवा में वजन सिद्ध होता है[2]।

---

1. ibid, page 2639,
2. The weight of air can be measured by way of an experiment. For that purpose, we must take a strong glass bulb closed with a stopper with a clamped rubber tube inserted into it. We pump the air out of the bulb and weigh it on a balance. If now we open the clamp and let air into the bulb, the balance will be disturbed. To attain the equilibrium again we must put weights on the other pan of the balance equal to the weight of the air in the volume of the bulb.

--------Physics, A.V. Peryshkin, Page 97

इसके पश्चात् इसे स्पष्ट सिद्ध करने के लिये अनेक प्रयोग विकसित होते गए। आज पृथ्वी के सम्पूर्ण वातावरण के भार को जाना जा चुका है। वैज्ञानिकों के कलन के अनुसार भूमण्डल में सामान्यतः ५ पद्म १० नील टन हवा का दबाव है[1]! सचमुच, इतने जबर्दस्त भार को क्या हम आसानी से सोच भी सकते हैं!!

वायु में गुरुत्व मानने पर दर्शन के प्रश्नों का समाधान– इस प्रकार १७वीं शताब्दी में वायु में गुरुत्व की स्थापना से पूर्व तक भारत में इसके गुरुत्व पर अनेक प्रश्न उपस्थापित किये जाते थे। एक प्रश्न यह था कि यदि वायु में गुरुत्व है तो ऊपर वाली वायु नीचे क्यों नहीं गिर पड़ती। आँधी में ऊपर उठी वायु नीचे किस प्रकार आती है– यह एक अलग प्रश्न था, जिसका विवरण पिछले परिच्छेद में दिया है। पर सामान्य दशा में वायु के अधःपतन न होने से वायु में गुरुत्व न होने के सिद्धान्त की स्थापना की जाती थी।

इस प्रश्न का समाधान संकेत से प्रशस्तपादभाष्य द्वारा प्राप्त हो जाता है। वहाँ गुरुत्व–निरूपण के अवसर पर कहा है कि यह गुरुत्व संयोग द्वारा बाधित होता है। अर्थात् किसी स्थिर पिण्ड के साथ संयोग की स्थिति में गुरुत्व जनित क्रिया सम्पन्न नहीं होती। जैसे किसी पालकी पर बैठे मनुष्य का स्थिर पालकी से संयोग के कारण गुरुत्व द्वारा अधःपतन नहीं होता[2]।

---

२. इसे सिद्ध करने के लिये या० पेरेलमान विरचित 'मनोरंजक बीजगणित' पृ. १३ का एक अंश उद्धृत करते हैं–

"धरातल के हर वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र को हवा करीब 1 किलोग्राम के बल से दाबती है। इसका मतलब है कि 1 cm^2 क्षेत्र पर खड़े वायुस्तम्भ का भार 1 Kg है। पृथ्वी के पूरे वातावरण (वात + आवरण) को ऐसे ही वायु–स्तम्भों को सटा सटा कर रखने से बना हुआ माना जा सकता है। इन वायु–स्तम्भों की कुल संख्या उतनी होगी, जितने वर्ग–सेंटीमीटर पृथ्वी की सतह (धरातल) पर होंगे। किसी ज्ञानकोश में देखकर जान सकते हैं कि धरातल का कुल क्षेत्रफल 51 करोड़ वर्ग किलोमीटर अर्थात् 51.10^7 Km^2 है। अब देखें कि एक वर्ग किलोमीटर में कितने वर्ग सेंटीमीटर होंगे। रैखिक किलोमीटर में 1000 मीटर होते हैं और हर मीटर में 100 सेंटीमीटर होते हैं। अतः रैखिक किलोमीटर में 10^5 सेंटीमीटर हुए। वर्ग किलोमीटर में $(10^5)^2=10^{10}$ वर्ग सेंटीमीटर हुए। अतः धरातल पर वर्ग सेंटीमीटरों की कुल संख्या होगी– $=51.10^{17}$। पृथ्वी का वातावरण इतना ही किलोग्राम भारी है। इसे टन में व्यक्त करने पर मिलेगा– $=51.10^{14}$ टन। .... वातावरण का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान का लगभग दस लाखवाँ अंश है।

१. संयोगप्रयत्न– संस्कार– विरोधि। ——प्रशस्तपादभाष्य, गुरुत्व–निरूपण पृ. ६४

तथा च दोलारूढस्य संयोगेन प्रतिबन्धादपतनम्। ——वहीं पर न्यायकन्दली।

ठीक इसी कारण से स्थिर वायु में गुरुत्व होने पर भी उसका अधःपतन नहीं होता। धरती पर ऊपर नीचे के सभी स्तरों पर वायु वर्तमान है। अतः ऊपर के स्तर वाली वायु नीचे वाली वायु से संयुक्त होकर उसके अणुओं से प्रतिकर्षित होती हुई गुरुत्व होने पर भी अधःपतित नहीं होती। यह वैसे ही है जैसे किसी बर्तन में ऊपर की सतह का पानी नीचे तलहटी पर नहीं गिरता। पर इसे गर्म करने पर 'संवहन' (convection) क्रिया से नीचे वाले पानी के ऊपर जाने पर ऊपर का ठण्डा पानी तुरन्त नीचे आ जाता है। इसी प्रकार हवा के भी गर्म होकर ऊपर जाने की स्थिति में तुरन्त ही पास की हवा आँधी के रूप में उस स्थान पर आ गिरती है। लालटेन में भी शीशे की हवा के हल्की होने पर तुरन्त ही पास की हवा छिद्रों से वहाँ उपस्थित होती है।

आधुनिक युग में हवा के भार तथा दबाव आदि के विषय में इतने सुस्पष्ट परीक्षण हो चुके हैं कि अब इन पर कोई भी प्रश्न इतिहास की बात हो गई है।।

---

१०. त्वगिन्द्रिय तथा स्पर्श।

वेदों में 'त्वक्' शब्द मनुष्य या पशु के चर्म अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। एक मन्त्र में मनुष्य के काले रंग के त्वक् या चर्म का वर्णन है[1]। अन्य मन्त्र में– 'गाय के चर्म पर निचोड़ा जाता हुआ सोम आवाज करता हुआ इन्द्र के स्थान पर जाता है' यह कहा है[2]।

इसके पश्चात् प्राणियों के अलावा वृक्षों की छाल या पपड़ी के लिये भी 'त्वक्' शब्द का प्रयोग होने लगा। ऐसे कुछ वल्कल तथा त्वक् कही जाने वाली छाल पहनने के काम में भी आती थी। अतः वल्कल के साथ–२ त्वक् का वस्त्र अर्थ भी हो गया। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट ही त्वक् को वस्त्र कहा गया है[3]। इस अर्थ में त्वक् का प्रयोग परवर्ती संस्कृत साहित्य में भी प्राप्त है। महाकवि कालिदास ने कहा है कि उस रघु ने त्वक् को धारण करके पिता से अस्त्र विद्या सीखी[4]।

दर्शनशास्त्र में स्पर्श ग्रहण कराने वाली इन्द्रिय को त्वक् कहा जाता है। इस अर्थ में प्राचीन प्रयोग बृहदारण्यक उपनिषद् में उपलब्ध है[5]। दर्शन में यह स्वीकार किया है कि इस शब्द का चर्म अर्थ ही मौलिक है। पश्चात् इसमें वर्तमान इन्द्रिय को भी उपचार या लक्षणा से त्वक् कहा गया[6]। इस प्रकार 'त्वचा ज्ञानम्' जैसे प्रयोगों में अन्वयानुपपत्ति से लक्षणा द्वारा इन्द्रिय अर्थ में प्रयोग हुआ। इसके पश्चात् निरूढलक्षणा से सभी प्रकार के प्रयोगों में इस 'त्वक्' शब्द का 'इन्द्रिय' अर्थ होने लगा। 'निरूढलक्षणा' किसी शब्द के गौण अर्थ की मुख्य अर्थ के रूप में बदल जाने की शास्त्रीय स्वीकृति होती है। काव्यशास्त्र में भी इस प्रक्रिया से यह मान लिया गया है कि 'त्वक्' शब्द 'इन्द्रिय' इस मुख्य वाच्यार्थ के रूप में प्रयुक्त होने लगा है।

---

१. मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत्। —ऋ. १.१३०.८

२. अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि। —ऋ. ६.१०१.१६

३. त्वक् हि वासः। —शतपथ ब्राह्मण ४.३.४.२६

४. त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवीमशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत्। —रघुवंश ३.३१

५. त्वचा हि स्पर्शान् वेदयते। —बृहदारण्यक उपनिषद् ३.२.६

६. त्वगिन्द्रियमिति समाख्या, त्वचि स्थितम् इन्द्रियं त्वगिन्द्रियमित्युच्यते, तत्स्थे तदुपचारात्। — प्रशस्तपादभाष्य, वायु–प्रकरण में न्यायकन्दली, पृ. ११४

त्वगिन्द्रिय वायु से निर्मित है (दर्शन)– इसकी परिभाषा के अनुसार सम्पूर्ण शरीर में परिव्याप्त स्पर्श–ग्राहक इन्द्रिय ही त्वक् है[1]। यह अन्य इन्द्रियों के समान अतीन्द्रिय अर्थात् अतिसूक्ष्म होने से अदृश्य है। इसे इन्द्रिय–विषयक एक विशिष्ट मान्यता के अनुसार वायु से निर्मित माना गया है। इसका निरूपण इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के तृतीय परिच्छेद में विस्तार से किया गया है। न्याय में इसे वायवीय सिद्ध करने के लिये अलग से भी अनुमान प्रस्तुत किया है। उसका आशय यह है कि *जो पदार्थ रूपादि गुणों में से केवल स्पर्श का अभिव्यंजन करता हो, वह अवश्य ही वायु से निर्मित होता है, जैसे अंग में लगे हुए जल की शीतलता का अभिव्यंजन करने वाली पंखे की हवा स्पष्टतः वायु–कणों से निर्मित है। इसी प्रकार केवल् स्पर्श का अभिव्यंजन करने वाली त्वगिन्द्रिय भी अवश्य ही वायु से निर्मित है[2]।*

इस अनुमान को सही सिद्ध करने का आधार यह तर्क है कि जो वस्तु जिस गुण का प्रकाशक हो, उसे उसी गुण वाली वस्तु से निर्मित होना चाहिये। कथासरित्सागर में एक सुन्दर उक्ति यह है–

यादृशास्तन्तवः कामं तादृशो जायते पटः!

अर्थात् जिस प्रकार का तन्तु होता है, वैसा ही कपड़ा बन कर तैयार होता है। अतः सफेद रंग को प्रकाशित करने वाला कपड़ा उसी रंग वाले तन्तु से निर्मित होता है। इस प्रकार शीत, उष्ण स्पर्श को प्रकाशित करने वाली इन्द्रिय ऐसे ही द्रव्य से निर्मित होनी चाहिये जो स्पर्शत्व जाति के अन्तर्गत समशीतोष्ण गुण धारण करती हो। इसे शीत गुण वाले जल से निर्मित मानने पर यह उष्ण गुण वाले तेज को तथा तेज से निर्मित मानने पर जल को प्रकाशित नहीं कर सकेगी। अतः इसे इन दोनों से भिन्न अनुष्णाशीत स्पर्श गुण वाले वायु से निर्मित स्वीकार किया गया है।

त्वगिन्द्रिय वायु से निर्मित नहीं है (विज्ञान)– आधुनिक विज्ञांन में त्वचा तथा शीत और उष्ण की संवेदना प्रदान करने वाले त्वचीय शीत बिन्दु (cold spots) उष्ण बिन्दु (warm spots) आदि का भली प्रकार अध्ययन किया गया है। इन स्थानों में रस, रक्त, सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ इत्यादि के अलावा वायु की

---

१. शरीरव्यापकं स्पर्शग्राहकमिन्द्रियं त्वक्। ——मुक्तावली, वायुनिरूपण पृ. १३६

२. तच्च (त्वक् च) वायवीयं रूपादिषु मध्ये स्पर्शस्यैवाभिव्यंजकत्वात्, अंगसंगिसलिल–शैत्याभिव्यंजक–व्यजनपवनवत्। –कारिकावली श्लोक ४३ पर मुक्तावली, वायु–प्रकरण, पृ.१४०

सविशेष या प्रबल उपस्थिति को नहीं देखा गया है। अतः इसका वायु उपादान कारण (material cause) होना सिद्ध नहीं होता।

यहाँ दर्शन के तर्कों तथा अनुमानों की समीक्षा करते हैं। दर्शन का यह कहना बिल्कुल सही है कि कोई द्रव्य अपने जिस गुण को प्रकाशित करता है, वह उसी गुण वाले उपादान कारण से निर्मित होता है। पर दूसरे द्रव्य के अन्य गुण को प्रकाशित करने वाले उपकरणों का उस अन्य गुण वाले द्रव्य से निर्मित होना आवश्यक नहीं, अपितु उसके प्रति संवेदनशील या ग्रहणशील होना अपेक्षित है। अन्य इन्द्रियों के प्रसंग में इसे विस्तार से सिद्ध किया जा चुका है। (देखें प्रथम खण्ड पृ. १८–१६)। आँखों से अन्य पदार्थ के रूप–ग्रहण के लिये आँखों का रूप वाले तेजस् से निर्मित होना नहीं, अपितु उसका रूप के प्रति ग्रहणशील होना अपेक्षित है। इसी प्रकार त्वगिन्द्रिय द्वारा अन्य पदार्थों के शीत, उष्ण स्पर्श को ग्रहण करने के लिये उसका उन गुणों के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक होता है, वायु से निर्मित होना नहीं।

प्रस्तुत प्रसंग में दर्शन–प्रोक्त अनुमान का उदाहरण भी अपने साध्य के अनुरूप नहीं है। दर्शन में यह मान लिया गया है कि जल में शीत–स्पर्श नित्यसम्बन्ध से वर्तमान होता है। अतः पंखे की हवा से शरीर में लगे जल के शीत स्पर्श का अभिव्यंजन (manifestation) होता है। विज्ञान का मानना है कि जल–अणुओं के प्रकम्पन–आयाम का कम होना ही उसकी सापेक्ष शीतलता है। यह उनकी गतिज ऊर्जा में ह्रास के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। पंखे की हवा से जल में इस प्रकार का शीतल स्पर्श उत्पन्न होता है। जबकि त्वचा द्वारा इस शीतल स्पर्श को प्रकाशित किया जाता है। इस प्रकार वायु द्वारा शीतल स्पर्श को उत्पन्न करने वाले उदाहरण से स्पर्श को प्रकाशित करने वाली त्वगिन्द्रिय को वायवीय सिद्ध नहीं कर सकते।

कदाचित् उत्पत्ति और अभिव्यक्ति के इस मतभेद को दार्शनिक सैद्धान्तिक समस्या मान सकते हैं। अतः यदि थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि पंखे की हवा से शीतल स्पर्श अभिव्यक्त होता है, तो भी यह अनुमान ठीक नहीं बन पाता। क्योंकि इसमें प्रस्तुत हेतु की साध्यगत एक विशेष दशा के साथ ही व्याप्ति होने से अभीष्ट साध्य की सिद्धि नहीं हो पाती।

प्रस्तुत अनुमान में यह व्याप्ति मानी गई है कि जो–२ पदार्थ केवल स्पर्श के अभिव्यंजक हों, वे अवश्य ही वायवीय होते हैं। जैसे अंग में लगे जल के शीतल स्पर्श का अभिव्यंजक पवन वायवीय है। यहाँ वास्तविकता यह है कि पवन का

मात्र वायवीय होना शीतल स्पर्श के अभिव्यंजन में कारण नहीं, अपितु इसकी वाष्पीकरण क्रिया इसमें कारण है। अतः स्पर्श के अभिव्यंजकत्व की इसके वाष्पीकरण के साथ व्याप्ति है। इस प्रकार जहाँ केवल स्पर्श का अभिव्यंजन हो, वहाँ केवल वायवीयत्व नहीं, अपितु उसका वाष्पीकरण कारण अवश्य उपस्थित होता है, यह सिद्ध होता है। जबकि हम इस अनुमान से त्वचा में वायवीयत्व सिद्ध करना चाहते हैं, उसका वाष्पीकरण नहीं। इस प्रकार यह अनुमान स्पष्टतः अपने अभीप्सित साध्य को सिद्ध करने में सक्षम नहीं है।

शीतल स्पर्श के लिये वाष्पीकरण की कारणता को स्पष्ट करने के लिये यहाँ इसकी वैज्ञानिक विधि का संक्षिप्त निरूपण करते हैं। हम जानते हैं कि द्रव के अणु अपनी गतिज ऊर्जा के द्वारा पूरे द्रव में विभिन्न दिशाओं में गति करते रहते हैं। इनकी गतिज ऊर्जा एक दूसरे से कुछ कम अधिक हो सकती है। अब यदि कोई अधिक गतिज ऊर्जा वाला अणु द्रव की सतह पर आ जाता है तो अन्य पास वाले अणुओं में इतना आकर्षण बल नहीं होता कि वे उसे नीचे ला सकें। अतः यह अणु असन्तृप्त गर्म हवा द्वारा खींच लिया जाता है तथा यह वाष्प बन जाता है। इस प्रक्रिया से अधिक गतिज ऊर्जा वाले अणुओं के बराबर खींचे जाने या वाष्पन होने की स्थिति में उस द्रव के अणुओं की मध्यमान गतिज ऊर्जा लगातार कम होती जाती है। यह घटना हमें शीतलता के रूप में उपलब्ध होती है।

घड़े या सुराही में इसी सिद्धान्त से पानी ठण्डा होता है। इनमें वर्तमान पानी के अधिक गतिज ऊर्जा वाले अणु घड़े के सूक्ष्म छेदों से सतह पर आ जाते हैं जो कि समीपवर्ती गर्म हवा द्वारा उड़ा लिये जाते हैं। वर्षा के दिनों में वाष्प से सन्तृप्त वायु द्वारा यह प्रक्रिया तीव्र गति से नहीं चल पाती। अतः उन दिनों पानी अधिक ठण्डा नहीं हो पाता।

इस शीतलीकरण के लिये यह आवश्यक है कि इस प्रक्रिया के द्वारा वाष्पीकरण हो, पर बाहर से ऊष्मीय ऊर्जा का प्रवेश न हो। यदि किसी बर्तन में पानी को खुला रख दें तो वाष्पीकरण की अपेक्षा उनके अणुओं को बाहर से अधिक ऊष्मीय ऊर्जा प्राप्त होती है। फलतः, पानी अधिक गर्म होता जाता है।

इस विवेचना से सिद्ध है कि जल के शीतल स्पर्श में वायु के द्वारा वाष्पीकरण कारण है। प्रस्तुत अनुमान से इस वाष्पीकरण की सिद्धि हो सकती है, केवल वायवीयत्व की नहीं। पर त्वचा से स्पर्श की उपलब्धि में कोई भी इसकी उपस्थिति को कारण नहीं मानते। ऐसा नहीं होता कि त्वचा से ठण्डा या गर्म का अनुभव करते समय त्वचा में अनिवार्यतः सामान्य से अधिक वाष्पीकरण होता हो।

इस प्रकार यह अनुमान अनभीष्ट को सिद्ध करता है तथा अभीष्ट को सिद्ध नहीं कर पाता। अतः आधुनिक विज्ञान में स्पर्श की उपलब्धि में त्वचा का वायवीय होना नहीं, अपितु उसके रस, रक्तीय होते हुए उसकी स्पर्श के प्रति संवेदनशीलता को कारण माना है।

प्रस्तुत विवेचन के अनुसार दर्शन तथा विज्ञान में संक्षिप्त मतभेद इस प्रकार है–

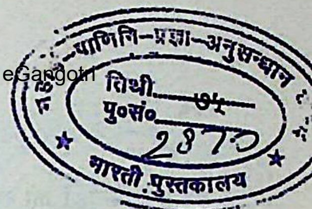
दार्शनिक	वैज्ञानिक
१. हवा लगने पर अंग में लगे जल का शीतल स्पर्श अभिव्यक्त होता है।	१. हवा लगने पर अंग में लगे जल या घड़े आदि के जल के अधिक गतिज ऊर्जा वाले अणुओं के ह्रास से उसमें शीतल स्पर्श उत्पन्न होता है।
२. इस शीतल स्पर्श में वायवीय द्रव्य कारण होता है।	२. इस शीतल स्पर्श में वायवीय द्रव्य का वाष्पीकरण कारण होता है।
३. त्वचा से स्पर्श की उपलब्धि में भी उस त्वचा का वायवीय होना कारण है।	३. त्वचा से स्पर्श की उपलब्धि में इसके रसरक्तीय विविध स्पर्श–बिन्दुओं की स्पर्श के प्रति संवेदनशीलता कारण है।

स्पर्श किसका होता है– न्याय शास्त्र के अनुसार पृथिवी, जल, तेज तथा वायु में रहने वाला स्पर्श एक गुण है। इसके शीत, उष्ण तथा अनुष्णाशीत उपभेद हैं। साथ ही केवल पृथिवी में रहने वाला कठिन, मृदु भी स्पर्श के अन्तर्गत मान्य है[1]।

त्वचा के द्वारा स्पर्श के इन्हीं उपभेदों–गुणों का प्रत्यक्ष होता है। जिस प्रकार शुक्ल, नील आदि गुणों वाला रूप होता है। सुगन्ध का रूप नहीं हो सकता। इसी प्रकार शीत, उष्ण आदि गुणों वाला स्पर्श होता है। अन्य किसी का स्पर्श नहीं हो सकता। हम लोग दैनिक जीवन में यह सोचते हैं कि किसी द्रव्य का स्पर्श हो सकता है। महाकवि कालिदास राजा दुष्यन्त के मुख से यह कहलाते हैं कि जिस शकुन्तला को हम अग्नि समझते थे, वह तो स्पर्श–योग्य रत्न है[2]!! पर न्याय के अनुसार कोई भी 'शकुन्तला' न तो स्पर्श योग्य हो सकती है; न ही हम

१. अनुष्णाशीतशीतोष्णभेदात् स त्रिविधो मतः।
काठिन्यादि क्षितावेव। ——कारिकावली, गुणनिरूपण, श्लोक १०४

२. आशंकसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्। ——अभिज्ञान– शाकुन्तलम् १,२८



उसका स्पर्श कर सकते हैं।

यहाँ सावधानी के साथ मान्यताओं को अलग-२ कर लेना आवश्यक है। हम केवल शीत, उष्ण आदि उपभेदों का स्पर्श कर सकते हैं, द्रव्य का नहीं। हम इन गुणों के माध्यम से त्वचा द्वारा द्रव्य का प्रत्यक्ष भी कर सकते हैं[1]। पर इसे द्रव्य प्रत्यक्ष कहा जावेगा, स्पर्श प्रत्यक्ष नहीं। हम लोग आरोप द्वारा इसे भी स्पर्श-प्रत्यक्ष कह देते हैं। तात्त्विक दृष्टि से यह भ्रम है। रत्न द्रव्य का प्रत्यक्ष रत्न के स्पर्श का प्रत्यक्ष नहीं है। रत्न के मृदु, कठोर गुणों का प्रत्यक्ष ही उसके स्पर्श का प्रत्यक्ष है।

कुछ लोगों का कहना है कि रत्न का मृदु, कठोर गुण संयोग का उपभेद है, स्पर्श का नहीं। अतः इन गुणों के प्रत्यक्ष को भी स्पर्श का प्रत्यक्ष नहीं माना जा सकता। पर मुक्तावलीकार ने इसका खण्डन करते हुए मृदु, कठोर स्पर्श का प्रत्यक्ष स्वीकार किया है[2]। न्याय की द्रव्य गुण की परिभाषा के अन्तर्गत यह मान्यता समीचीन है।

स्पर्श कैसे होता है— आधुनिक विज्ञान में स्पर्श संवेदना को शीत, उष्ण, पीडा तथा दबाव के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है। त्वचा में थोड़ी-२ दूर पर इन संवेदनाओं के बिन्दु अवस्थित होते हैं। कोई एक विशेष बिन्दु अपनी विशेष संवेदना को प्रदान करने में ही सक्षम होता है। किसी धातु की बनी कील की नोक को अलग-२ स्थानों में छुलाने से उन अलग संवेदनाओं के उत्तरदायी बिन्दुओं की स्पष्ट अनुभूति होती है।

शीतलता की संवेदना प्रदान करने वाले बिन्दुओं को शीत बिन्दु तथा (cold spots) उष्णता वाले बिन्दुओं को उष्ण बिन्दु (warm spots) कहा जाता है। त्वचा के इस प्रकार के बिन्दुओं के मध्य सर्वत्र अति सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का जाल बिछा है। किसी ठण्डीं वस्तु के संस्पर्श से शीत-बिन्दु के समीपस्थ रक्तवाहिनियों में एक प्रकार का आकुंचन या संकोच तथा गर्म वस्तु से इनमें विस्तार या फैलाव उत्पन्न होता है। इस घटना की सूचना नाडीय विक्षोभ द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचाई जाती है। हमारा मस्तिष्क इसकी क्रमशः शीतल तथा उष्ण स्पर्श के रूप में व्याख्या करता है।

किसी नोक से विविध बिन्दुओं को छूने पर दबाव की संवेदना प्राप्त होती

---

१. उद्भूतस्पर्शवद् द्रव्यं गोचरः सोऽपि च त्वचः।—कारिकावली, प्रत्यक्ष- खण्ड, श्लोक ५६

२. कठिन्नसुकुमारस्पर्शौ पृथिव्यामेव। कठिनत्वादिकं तु न संयोगनिष्ठो जातिविशेषः, चक्षुर्ग्राह्यत्वापत्तेः। ——कारिकावली श्लोक १०४ गुणनिरूपण पर मुक्तावली।

है। इन बिन्दुओं को स्पर्शांकुरिकाएँ (sensitive papillae) कहा जाता है। इनमें पतली स्पर्शांकुरिका को tactile corpuscles तथा मोटी को pacinian corpuscles कहते हैं। यह दूसरी मोटी स्पर्शांकुरिका मन्द दबाव को ग्रहण करतीं है। इनसे नाडीय सूत्र संयुक्त होते हैं तथा ये उत्तेजित होकर दबाव की सूचना मस्तिष्क को भेजते हैं।

त्वचा में पीडा– बिन्दु सर्वाधिक होते हैं। इन्हें अपेक्षाकृत अधिक पतले नाडीय सूत्रों के मुक्त छोर ग्रहण करते हैं।

इन बिन्दुओं के नोक के बीच एक मिली मीटर से भी कम का अन्तर होता है। इसलिये हम आसानी से नहीं बता सकते कि कब किस बिन्दु से उत्तेजना प्राप्त हुई। हमें प्रायः इन बिन्दुओं से सम्मिलित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इन्हें हम अलग स्पर्श के रूप में जानना चाहते हैं। चिकनापन, खुरदुरापन इत्यादि ऐसी ही स्पर्शानुभूतियाँ हैं।


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं०
भारती पुस्तकालय

